ओ३म्

परिवार और समाज के नवनिर्माण का साहित्यिक मासिक

शांतिधर्मी

अगस्त–2020

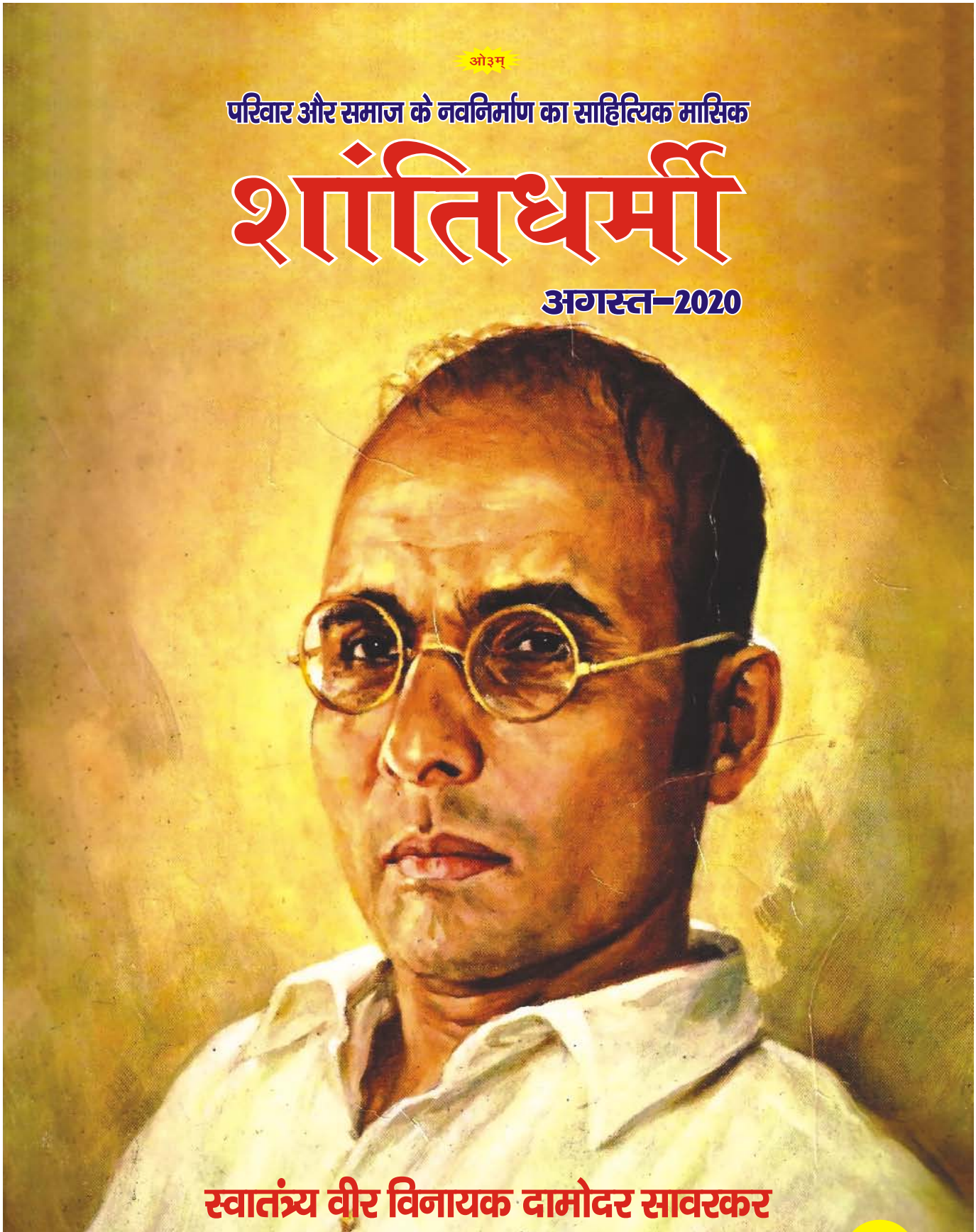

स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर

प्रकाशन का 22वां वर्ष

₹20

जींद, पटियाला चौंक पर शहीदे आजम युवा क्लब द्वारा नवनिर्मित शीतल जल प्याऊ के लोकार्पण के अवसर पर हवन का आयोजन किया गया, जिसमें श्री शिवप्रकाश सैनी ने यज्ञ की व्यवस्था में विशेष योगदान किया और श्री सहदेव शास्त्री ने यज्ञ ब्रह्मा की भूमिका निर्वहन की। विधायक डॉ० कृष्ण मिढा के सुपुत्र रुद्राक्ष मिढ़ा ने पूर्णाहुति दी। संस्था के सदस्यों के अलावा विधायक जी की धर्मपत्नी, श्रीमती निर्मल सैनी, श्रीमती सुमन मान आदि उपस्थित रहे।

नारनौंद, शिक्षण व सामाजिक कार्यों में विशिष्ट योगदान के लिए कवि एवं वरिष्ठ साहित्यकार प्राध्यापक श्री सतीश कुमार नारनौंद को जिला शिक्षा अधिकारी श्री अनिल कुमार, श्री अमनदीप खण्ड शिक्षा अधिकारी व जिला विज्ञान अधिकारी श्रीमती पूर्णिमा द्वारा खंड प्रशासन की ओर से स्वतंत्रता दिवस पर सम्मानित किया गया।

आर्यसमाज अकालगढ़ (जुलाना) के सदस्यगण साप्ताहिक हवन करते हुए। ज्ञातव्य है कि गांव मे गत १२ वर्षों से नियमित साप्ताहिक यज्ञ एवं सत्संग का कार्यक्रम होता है। भगतसिंह शास्त्री एवं मास्टर बलराज जी विशेष पुरुषार्थ करते हैं।

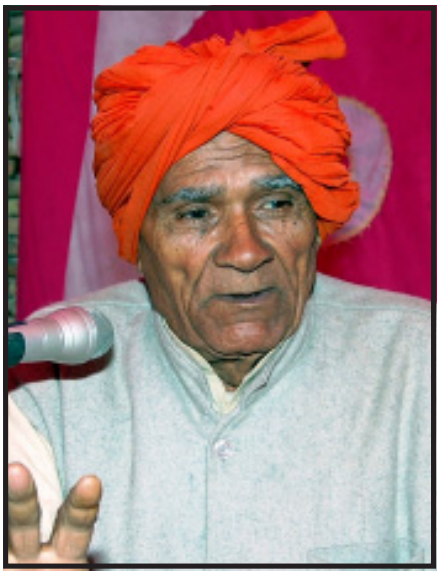

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक

पं० चन्द्रभानु आर्य

सम्पादक : **सहदेव समर्पित**
(चलभाष **09416253826**)

उपसम्पादक : **सत्यसुधा शास्त्री**

प्रबंध संपादक : **सुभाष श्योराण**

आदरी सम्पादक : **यज्ञदत्त आर्य**

सह-सम्पादक : **राजेशार्य आट्टा**
डॉ० विवेक आर्य

विधि परामर्शक : **डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट**

सहयोग : **आचार्य आनन्द पुरुषार्थी**
श्रीपाल आर्य, बागपत
महेश सोनी, बीकानेर
भलेराम आर्य, सांधी
कर्मवीर आर्य, रेवाड़ी

कार्यालय व्यवस्थापक: **रविन्द्रकुमार आर्य**

कम्प्यूटर सज्जा : **बिशम्बर तिवारी**

सहयोग राशि

एक प्रति	:	२०.०० रु॰
वार्षिक	:	२००.०० रु॰
दस वर्ष	:	१५००.०० रु॰

ओ३म्

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।

परिवार और समाज के नवनिर्माण का मासिक

शांतिधर्मी

प्रकाशन का बाईसवां वर्ष

अगस्त, २०२० ई०

वर्ष : २२ अंक : ७ भाद्रपद २०७७ विक्रमी
स ष्टि संवत्-१९६०८५३१२१, दयानन्दाब्द : १९७

क्या?	कहाँ
स्वतंत्रता का अर्थ?? (शांतिप्रवाह पुनर्प्रकाशन)	६
विश्व क्रन्दन (सामवेद अनुशीलन)	८
हमारा राष्ट्रधर्म (स्वराज चिन्तन)	१०
गद्दार कौन? जयचन्द्र या जाफर (स्वराज चिन्तन)	१२
वैदिक धर्म की सार्वभौमिकता (इतिहास)	१५
शाहूजी महाराज वैदिक विद्यालय और-- (समाज चिन्तन)	१७
वीर सेनापति तानाजी मालसूरे (वीर गाथा)	१९
ब्रह्मज्ञान और उसके अधिकारी (आत्मिक उन्नति)	२१
ईशोपनिषद् : महात्मा नारायणस्वामी कृत व्याख्या-३	२४
स्वास्थ्य और व्यायाम (स्वास्थ्य चर्चा)	२६

कविता : ६ डॉ० श्वेतकेतु, नरेन्द्र अत्रि

कथा : मिलकर चलना, धरोहर, सोच का अन्तर : ३०

स्तम्भ : बालवाटिका-२९, भजनावली-२८, बिन्दु बिन्दु विचार-३४

संस्कृत दिवस पर विशेष/समाचार सूचनायें ---

कार्यालय :

सम्पादक शांतिधर्मी, **पो बाक्स नं० 19**
मुख्य डाकघर जींद 126102
७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक, जीन्द–१२६१०२ (हरि०)
दूरभाष : 9996338552
ईमेल- **shantidharmijind@gmail.com**

पूर्ण सम्पादक मण्डल अवैतनिक है। पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र जीन्द होगा।

❐सहदेव समर्पित

इलाज बदलो

कोई भी समाचार चैनल खोलकर देखें- आजकल एक अभिनेता की आत्महत्या (या हत्या?) के समाचार बड़े व्यापक स्तर पर प्रसारित हो रहे हैं। पिछले दिनों एक समाचार आया कि एक १२ वर्षीय बच्चे ने अपने स्कूल में पंखे से लटक कर आत्महत्या कर ली। मृत्यु पूर्व लिखे गए पत्र में उसने अपनी मृत्यु का जिम्मेवार अपनी शिक्षिका को बताया जो उसे स्कूल में कम्प्यूटर नहीं चलाने देती। यह हृदयविदारक समाचार पत्र के एक छोटे से कोने में छपा, किसी का ध्यान गया, किसी का नहीं। कुछ दिन में लोग इन बातों को भूल जाते हैं। इस प्रकार की घटनाओं के समाचार निरन्तर आते हैं, जब लोग किसी छोटी सी बात पर तैश में आकर अपने अमूल्य जीवन को समाप्त कर लेते हैं। यह छोटा बच्चा भी-- और आत्महत्या करने वाले युवक-युवतियाँ भी-- इस बात को नहीं जानते कि उनके लिए सही क्या है और गलत क्या है! वे अपने माने हुए सच को ही सच समझते हैं और उसको पूरा न होते देखकर अपनी जीवन लीला को समाप्त करना ही उचित समझते हैं।

आजकल के मनोविज्ञानियों के अनुसार आत्महत्या का विचार उठना एक मनोरोग है। प्राचीन विचारकों ने इस पर ज्यादा गम्भीरता से विचार किया है। हमारे मन में किस प्रकार के विचार उठते हैं- इसके मूल में सत्त्व, रज और तम- तीन गुण होते हैं। रजोगुण से उत्पन्न होने वाला काम (कामनाएँ) जब पूरा नहीं होता तो क्रोध उत्पन्न होता है। गीता में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। क्रोध के काबू में आया हुआ व्यक्ति अपने काबू में नहीं रहता। वह औरों की भी हानि कर सकता है और अपनी भी। पर अपनी हानि करने का कारण बनता है उसका असामाजिक स्वभाव। जिन बच्चों की बचपन से ही वे सब इच्छाएँ पूरी की जाती हैं जो वह दूसरों का हक दबाकर करना चाहता है, तो उसका स्वभाव असामाजिक हो जाता है। वह सामाजिक नियमों को स्वीकार नहीं कर सकता। परिस्थितियाँ तो सदा एक समान नहीं रहतीं, जब उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं हो पाती तो वह जीवन को व्यर्थ समझने लगता है।

लेकिन १२ साल के बच्चे को यह विचार किसने दिया कि उसे आत्महत्या कर लेनी चाहिए? वह अपने अभिभावकों से बात कर सकता था। वे अध्यापकों से बात कर सकते थे। वह स्कूल बदलने की जिद कर सकता था। लेकिन उसने केवल आत्महत्या का मार्ग चुना। इसके पीछे के पारिवारिक और सामाजिक कारणों पर हमें गंभीरता से विचार करना होगा। इस प्रकार के हिंसा, क्रूरता के संस्कार बच्चों में टेलीविजन/इन्टरनैट के माध्यम से आ रहे हैं। कम्प्यूटर खेलों के माध्यम से आ रहे हैं। और सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि हम इस ओर से बिल्कुल आंख मूंद कर बैठे हैं। हम अपने परिवार के लिए सब तरह की योजनाएँ बनाते हैं- मकान की, व्यवसाय की, नौकरी की, रोजगार की- कहते हैं कि मां बाप बच्चों के लिए सब कुछ करते हैं- पर उनके संस्कारों के लिए कुछ नहीं करते। इसीलिए संसार में समृद्धि बढ़ रही है, खर्च करने की शक्ति बढ़ रही है लेकिन विषाद, तनाव, कुण्ठाएँ भी बढ़ रही हैं। काम करने के लिए तरह तरह की मशीनें आ गई हैं, फिर भी व्यस्तता बढ़ रही है। अस्पताल, औषधियों की भरमार हो रही है फिर भी बीमारियाँ बढ़ रही हैं। कहते हैं शिक्षा का युग है, फिर भी पाखण्ड और अंधविश्वास बढ़ रहे हैं। कहीं न कहीं कोई कमी तो अवश्य है समाज में भी और परिवार में भी। पं० शोभाराम 'प्रेमी' लिखते हैं-

एक डॉक्टर की दवाई, बहुत वर्षों तक खाई।
न उन्नीस बीस मर्ज में फर्क कुछ दिया दिखाई।।
झूठे डॉक्टर गलत दवा यह इलाज बदल डालो!

सब कुछ हो रहा है, पर जिसके लिए सब कुछ हो रहा है उसके लिए कुछ नहीं हो रहा है। जब मनुष्य मनुष्य ही नहीं रहेगा तो उसके लिए किये जा रहे ये तमाम भौतिक चकाचौंध के साधन किस काम आएँगे? इसलिए हमें मनुष्य बनाने की योजनाओं पर कार्य करना ही होगा। धर्म मनुष्य को मनुष्य बनाता है, उसे पशुओं की श्रेणी से अलग करता है। सब प्रकार की शिक्षा से ज्यादा महत्त्व धर्म की शिक्षा को देना होगा। महर्षि मनु के अनुसार धर्म का पहला ही लक्षण 'धृति' है। उस मानव धर्म को पाठ्यक्रमों में सर्वोपरि स्थान देना होगा। और सबसे बढ़कर उस शिक्षा प्रणाली को स्थान देना होगा जो मानव का निर्माण करती है। मनुष्य के तीन शिक्षक- माता, पिता और आचार्य को अपने कर्त्तव्यों का पालन करना होगा। बच्चे को बोलना-चालना, बाँटकर खाना, दूसरों का सम्मान करना, बड़ों की आज्ञा का पालन करना, धैर्य रखना आदि उत्तम शिक्षाएँ माँ से बढ़कर कोई नहीं दे सकता। माता, पिता और आचार्य का आचरण शुद्ध, पवित्र हो। घरों में टी वी शो के स्थान पर नियमित स्वाध्याय हो, संध्या हो, जिससे मनुष्य मनुष्य बने। उसकी आत्मिक शक्ति का विकास हो, जिससे वह अपने पूर्वजों से प्रेरणा लेकर संघर्ष करने की सोचे, आत्महत्या करने की नहीं।

आपकी सम्मतियाँ

प्रगतिशील शान्तिधर्मी को कोटि-कोटि शुभकामनाएँ। यह अंक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व ज्ञानवर्धक है। संपादकीय द्वारा आत्मनिरीक्षण से बाल वाटिका तक सभी सामग्री जीवनोपयोगी है। पाण्डे जी का लेख गुरुकुल भी वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य के लिये महत्वपूर्ण है। डॉ० विवेक आर्य जी का 'योग का प्रादुर्भाव भी वेदों से' महत्त्वपूर्ण व उपयोगी आलेख है। पक्की वाले बाबा और सच्ची आस्तिकता प्रेरणादायक जीवन दर्शन है। सत्य कथा से मानव उत्थान को सत्यार्थ कर दिया। सतीश जी की कविताओं ने भावविभोर कर दिया। बाल वाटिका में कथानक श्रेष्ठ प्रेरणादायक हैं।

डॉ० श्वेतकेतु शर्मा
(पूर्व सदस्य हिन्दी सलाहकार समिति, भारत सरकार)
१०, केलाबाग, सावित्री सदन, बरेली (उ० प्र०)

शांतिधर्मी पत्रिका का जुलाई अंक प्राप्त हुआ। पुस्तक का प्रथम स्वरुप ही इसके आध्यत्मिक ऊर्जा से परिपूर्ण होने का संकेत दे रहा है। इस अंक को आध्यात्मिक अंक कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज के समाज में व्यक्ति शारीरिक से अधिक मानसिक रोगों से पीड़ित हो गया है। भागदौड़ भरे जीवन में आध्यात्मिक ज्ञान ही उसका एक मात्र सहारा है। आध्यात्मिकता की कमी से महानगरों में अकेलापन, पारिवारिक वैमनस्य, क्लेश, अधीरता, पारिवारिक विघटन आदि महामारी के रूप में बनकर सामने आये हैं। ऐसे में वेद विहित आध्यात्मिकता इन समस्याओं के लिए सर्वोत्तम औषधि है। सम्पादक महोदय को जीवनोपयोगी सन्देश देने के लिए साधुवाद।

डॉ० निधि आर्या
द्वारा वात्सल्य बाल एवं शिशु हस्पताल
सैनी मोहल्ला, नजफगढ़, दिल्ली

शान्तिधर्मी के जुलाई अंक का वाट्स एप पर अवलोकन किया। इसमें कुछ लेख जो प्रौढ़ पाठकों के लिए पठनीय हैं और कुछ बाल पाठकों के लिए- वे मुझे बहुत रोचक और प्रेरक लगे। ऐतिहासिक दृष्टि से दिये गए दोनों लेख अच्छे और आवश्यक हैं। उत्तम चयन और सटीक सम्पादन के लिए धन्यवाद।

पं० रामनिवास गुणग्राहक
आर्यसमाज श्रीगंगानगर (राजस्थान)

शांतिधर्मी पत्रिका का प्रकाशन आपके द्वारा बहुत ही अच्छा व सराहनीय है। प्रकाशन सामग्री बहुत ही शिक्षाप्रद व समय के अनुसार है। आर्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए आपका योगदान बहुत ही सराहनीय है। आपको अपनी लेखनी से जीवन में यश मिले व उन्नति का रास्ता और भी प्रशस्त हो, ईश्वर से यही कामना है।

वेदपाल आर्य (9812318044)
ग्राम मढी महाराम, पोस्ट अकोस
जिला मथुरा (उ० प्र०)

बहुत सुन्दर आवरण का यह अंक योग, अध्यात्म और साहित्यिक गद्य व पद्य रचनाओं से सुसज्जित है। सम्पादक का परिश्रम सफल है, बधाई।

डॉ० केवल कृष्ण पाठक
सम्पादक रवीन्द्र ज्योति,
आनन्द निवास, गीता कालोनी, जींद-१२६१०२

जुलाई अंक के आत्मचिंतन में संपादकीय 'आत्म-निरीक्षण' शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक है! यह मानवीय कम जोरी है कि वह हमेशा दूसरों में कमियां या दोष ढूंढता है। अगर दूसरों में कमियां दूर करने की बात सकारात्मक दृष्टिकोण से की जाए तो यह पुण्य का काम है, अन्यथा इसे निंदा ही समझना चाहिए। वहीं आत्मनिरीक्षण करके अपनी कमियों को भी दूर करना चाहिए। अंग्रेजी की कहावत है कि Man can see straw into the eyes of others, but cannot see beam into his own eyes. अर्थात् मनुष्य को दूसरों की छोटी सी छोटी बुराई का तो पता चल जाता है लेकिन अपने आप में बड़ी से बड़ी बुराई का भी पता नहीं चलता! आदमी को आत्म निरीक्षण, स्वाध्याय, आत्म चिंतन जरूर करते रहना चाहिए। इससे अपनी कमियों का पता चल जाता है और आदमी पाप से बच जाता है। इस बेहतरीन संपादकीय के लिये हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं। अमित कुमार आर्य का लेख 'भजनोपदेशकों का युग' जानकारी बढ़ाने वाला है। सतीश कुमार की कविताएं रोचक लगीं! शिवांशु पांडे का लेख 'मानव निर्माण की आधारशिला : गुरुकुल' से इस प्रणाली के बारे में पर्याप्त जानकारी मिली। डॉ० विवेक आर्य का लेख 'योग का प्रादुर्भाव भी वेदों से' अनेक भ्रमों को दूर करने वाला है। अजय कुमार और सीता राम गुप्ता के लेख प्रेरक, रोचक हैं। बाल वाटिका हमेशा की तरह ज्ञानवर्धक, रोचक तथा मनोरंजक है।

प्रोफेसर शामलाल कौशल (9416359045)
975 बी, ग्रीन रोड, रोहतक-१२४००१

(शांतिप्रवाह : पुनर्प्रकाशन; अगस्त २०११)

स्वतंत्रता का अर्थ?

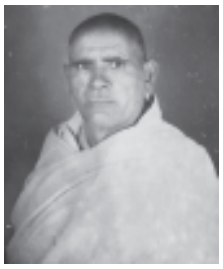

❒स्व० श्री चन्द्रभानु आर्य संस्थापक शांतिधर्मी

❒❒हम हर वर्ष १५ अगस्त को भारतवर्ष की स्वतंत्रता का पर्व मनाते हैं। उस पीढ़ी के साथ कई बार एक विभ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसने परतंत्रता के समय को देखा है। स्वतंत्रता का अर्थ क्या है, और इसके लिए प्रार्थना और पुरुषार्थ करने का क्या उद्देश्य है? क्या स्वतंत्रता एक अनुभूति मात्र है, या यह कोई जीवन्त अवस्था है जो मनुष्य की जीवनी शक्ति को बढ़ा देती है! गुलाम और आजाद व्यक्ति में, समाज में और राष्ट्र में क्या अन्तर है? मनुष्य स्वतंत्रता की स्वाभाविक इच्छा क्यों रखता है? मनुष्य ही क्यों प्रत्येक प्राणी स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता की अभिलाषा रखता है। मनुष्य के लिए स्वतंत्रता के मायने क्या यही हैं कि उस पर एक देश के लोगों की बजाय दूसरे देश के लोग शासन करने लगें? स्वामी दयानन्द ने स्वतंत्रता का उद्घोष करते हुए सत्यार्थप्रकाश में लिखा कि जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। राज्य के स्वदेशी होने में क्या उत्तमता है यह समझने की आवश्यकता है। वास्तव में स्वतंत्रता का अर्थ है योगक्षेम की प्राप्ति। मनुष्य को अपनी उन्नति के सब प्रकार के अवसर मिलें। वैदिक सिद्धान्त है कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है पर फल भोगने में पराधीन है। वह प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतंत्र है। स्वतंत्रता का अर्थ है कि व्यक्ति अपने विकास के लिए वे सब कार्य कर सकता है जिनमें दूसरों की हानि न हो। ईश्वरीय व्यवस्था में भी और मानवीय व्यवस्था में भी वह पापी और अपराधी तभी बनता है जब वह दूसरों की स्वतंत्रता को बाधित करता है। अपनी उन्नति करना कोई अपराध नहीं है, पर दूसरों की उन्नति की कीमत पर अपनी उन्नति के प्रयास करना पाप है, अपराध है। मानवीय व्यवस्था मानव के लिए है न कि मानव व्यवस्था के लिए। इसे स्पष्ट कहें तो मनुष्यों ने जो अपनी शासन व्यवस्थाएँ बनाई वे अपनी सुविधाओं के लिए बनाईं। जो व्यवस्था उसे सुरक्षित, भयमुक्त वातावरण में उन्नति के अवसर दे, वही उसे अभिप्रेत है। आज स्वतंत्रता दोनों अर्थों में अपूर्ण है। न तो व्यक्ति को अपनी उन्नति के सुरक्षित अवसर मिल रहे हैं और न ही शक्तिशाली लोगों से उसे सुरक्षा मिल रही है। दूसरों की उन्नति को बाधित करके, बल्कि दूसरों के प्राणों का संकट उपस्थित करके भी अपनी उन्नति के प्रयत्न करने वाले तो स्वतंत्र हैं। उन्हें कानून का कोई भय नहीं है। भ्रष्ट आचरण करने वाले पर कोई अंकुश नहीं है। बल्कि व्यवस्था खराब करने वाले लोग ही व्यवस्था का दायित्त्व निभा रहे हैं। देशी शब्दों में कहें तो दूध की रखवाली का काम बिल्ली के जिम्मे है। न शिक्षा है, न सुरक्षा है, न रोजगार है, न निश्चिंतता है-- तो यह सर्वोपरि उत्तम कैसे है? लोकतंत्र को मजाक बन रहा है। फिर भी हम इसे स्वतंत्रता मानकर प्रसन्न हैं तो यह हमारी महानता ही कही जाएगी।

❒❒सुरक्षित वातावरण में ही ज्ञान विज्ञान की, विद्या की, आत्मा की, अध्यात्म की उन्नति हो सकती है। जब सिर पर शत्रु की तलवार लटक रही हो तो कौन अष्टांग योग की सिद्धि प्राप्त कर पाएगा! इसलिए हमारे देश के इतिहास में अवसर पड़ने पर त्यागी तपस्वी साधु संन्यासियों के, गुरुओं के युद्धक्षेत्र में आ डटने के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। भोजन, धन सम्पत्ति की रक्षा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है संस्कृति की रक्षा। वह विचार, वह चिन्तनधारा जिसे पीढ़ियों ने अन्तःप्रेरणा पाकर अपनी साधना से पुष्पित और पल्लवित किया है, उसे संस्कृति कहते हैं। उसकी रक्षा के लिए प्राणों की बाजी भी लगाई जाती रही है। वही हमारी असली पैतृक सम्पत्ति है जो दायभाग में मिली है। धन तो हम फिर भी कमा लेंगे लेकिन जिस संस्कार को पीढ़ियों ने सुरक्षित रखा, अपने प्राणों तक का मोह छोड़कर, उसे हम फिर कहाँ से प्राप्त करेंगे? इस देश पर आक्रमण करने वाले लोगों को बहुत दिनों तक यह समझ नहीं आया कि वह प्राणतत्त्व इन भारतीयों में क्या है जो इन्हें हारकर भी विजयी बना देता है, यह तथ्य बहुत बाद में अंग्रेजों को समझ आया तो उन्होंने उस मूलतत्त्व पर प्रहार किया। वह थी हमारे चिन्तन की धारा। उनसे पूर्व के आक्रमणकारियों ने तो पुस्तकालय जला दिये, पर इन लोगों ने व्यवस्थित रूप से अर्थ परिवर्त्तन, इतिहास का विकृतिकरण और पूर्व के विचारों और संस्कारों के प्रति हीनभावना उत्पन्न करने के प्रयत्न किये जो बहुत मात्रा में फलीभूत हुए। वे आज भी हो रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद जिस चीज की सबसे पहले रक्षा होनी चाहिए थी उसको आज भी उसी प्रकार बल्कि उससे भी ज्यादा तीव्र गति से और शक्ति से नष्ट किया जा रहा है। देशवासियों को अपने देश, अपनी संस्कृति, अपनी विरासत पर गर्व करने का अवसर क्यों नहीं दिया जाता? सृष्टि की आदि से लेकर आज से दो हजार साल पहले तक का इतिहास उन्हें क्यों नहीं पढ़ाया जाता? न रोटी है, न कपड़ा है, न शिक्षा है, न इतिहास है न संस्कृति है, न राष्ट्रगौरव है-- तो फिर इस स्वतंत्रता का अर्थ क्या है! ❒❒❒

संस्कृत सप्ताह पर विशेष

भारतीय संस्कृति व सभी भाषाओं का मूल हैं संस्कृत

(आचार्य) डॉ० श्वेत केतु शर्मा, पूर्व सदस्य हिन्दी सलाहकार समिति, भारत सरकार

संस्कृतं सर्वासां भाषाणां जननी अर्थात् सभी भाषाओं की जननी संस्कृत है, विश्व की सभी भाषाओं का प्रादुर्भाव संस्कृत भाषा से ही माना गया है तथा भारतीयता के परिवेश का आकलन संस्कृत भाषा के बिना नहीं किया जा सकता।

भारतीय संस्कृति के मूल में संस्कृत भाषा ही है, इस देश के ज्ञान-विज्ञान की प्रमुख भाषा संस्कृत है, भारतीय पर्व, भारतीय १६ संस्कारों का वर्णन संस्कृत भाषा में ही है। आयुर्वैदिक चिकित्सा, चार वेद, उपवेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, वेदांग-शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द- ज्योतिष आदि सभी संस्कृत भाषा में ही है।

भारतीय संस्कृति का अपार ज्ञान भण्डार उपनिषद्-न्याय-ईश-कठ-मुण्डक-केन-प्रश्न-छान्दोग्यादि उपनिषद् संस्कृत भाषा में ही विद्यमान है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में शतपथ-एतरेय-ताण्ड्य-गोपथ-सूत्र-आरण्यक-स्मृति आदि के ज्ञानवर्धन के लिये संस्कृत का पढ़ना परम आवश्यक है।

विशिष्ट ज्ञान-विज्ञान की भाषा भी संस्कृत ही है, वेदों में विज्ञान, सृष्टि-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, ब्रह्मांड-विज्ञान, जलसंरक्षण, पर्यावरण-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, जल-चिकित्सा, सूर्य-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा-शल्य यन्त्र वर्णन, हस्त स्पर्श चिकित्सा, मंत्र-चिकित्सा, यज्ञ-चिकित्सा में एड्स, स्वान फ्लू, डेंगू आदि सम्पूर्ण विज्ञान संस्कृत भाषा में ही विद्यमान है।

संस्कृत भाषा में विशाल शब्द कोष है। एक शब्द से हजारों की संख्या में शब्दों का निर्माण हो जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से संस्कृत भाषा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गीता-रामायण-महाभारत आदि सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही है, शारीरिक स्वास्थ्य के लिये योग प्राणायाम के लिये भी संस्कृत जानना जरूरी है।

विश्व के वैज्ञानिकों ने प्रमाणित कर दिया है कि कम्प्यूटर के समुचित प्रयोग के लिये संस्कृत सर्वश्रेष्ठ भाषा है। आज के विकासशील युग में अपार ज्ञान व विज्ञान को समझने के लिये संस्कृत को जानना समय की मांग है, संस्कृत दिवस व सप्ताह पर संस्कृत को आत्मसात् करने का संकल्प लेकर ही हम भारतीय कहलाने के अधिकारी होंगे।

कहा जा रहा है कि यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी की राष्ट्रवादी सरकार ने नई शिक्षा नीति में संस्कृत को महत्त्व दिया है। हालांकि यह एक साहसिक कदम है, पर केवल विद्यालयी शिक्षा में संस्कृत को लागू करने से पूर्ण लाभ नहीं होगा। संस्कृत के क्षेत्र में मरणासन्न पारम्परिक अनुसन्धानात्मक क्षेत्र को पुनर्जीवित करने से ही इस भारत राष्ट्र का गौरव पुनः जाग्रत होगा। संस्कृत में अनुसंधान और शिक्षण के क्षेत्र में रोजगार सृजन की सर्वोपरि आवश्यकता है।

प्रोफेसर शामलाल कौशल की पुस्तक 'आज्ञाकारी पति होने के फायदे' पुरस्कृत

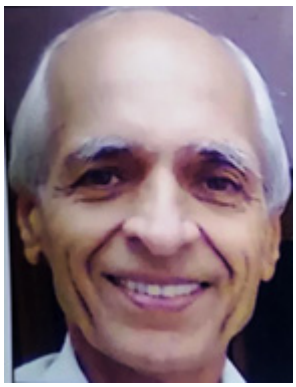

हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला द्वारा वर्ष २०१६ के श्रेष्ठ कृति पुरस्कारों की घोषणा कर दी गई है। घोषणा के अनुसार रोहतक के प्रोफेसर शामलाल कौशल को उनकी पुस्तक 'आज्ञाकारी पति होने के फायदे' को हजारी प्रसाद द्विवेदी श्रेष्ठ कृति सम्मान से सम्मानित किया जाएगा। पुरस्कार स्वरूप ३१०००/- की नगद राशि तथा स्मृति चिह्न प्रदान किया जाएगा। पुस्तक 'आज्ञाकारी पति होने के फायदे' में ५१ हास्य व्यंग्य रचनाएं हैं जो व्यवस्था पर गहरा प्रहार करती हैं तथा हास्य के द्वारा पाठकों को गुदगुदाती भी हैं। इससे पूर्व भी आपको कई साहित्यिक संस्थाओं ने समय- समय पर सम्मानित किया है। जीवनपर्यंत शिक्षा क्षेत्र से जुड़े प्रोफेसर कौशल की विभिन्न विषयों पर एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मुख्यतः आप कहानी, कविता, लघुकथा, हास्य-व्यंग्य तथा आलेखों की रचना करते हैं जो कि निरंतर प्रमुख समाचार पत्रों में, हिंदी, पंजाबी तथा अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होते रहते हैं। इस पुरस्कार की घोषणा के उपरांत प्रदेश के अनेक साहित्यकारों ने प्रोफेसर कौशल को बधाई दी तथा उनकी दीर्घायु की मंगलकामनाएं की।

(मधुकांत, 98966 67714)

अनुशीलन सामवेद : आग्नेय पर्व

विश्व क्रन्दन

–लेखकः पं० चमूपति

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रꣳ होतारꣳ सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्।।

ऋषिः–वामदेवः–कमनीय द्युतिमान्।

हे मानव बन्धुओ! (वः) तुम (रोदस्योः) पृथिवी तथा द्युलोक में (सत्ययजम्) सत्य का यज्ञ करने वाले (अध्वरस्य) सृष्टि–संयोग के (राजानम्) राजा (रुद्रम् होतारम्) रो रोकर पुकार रहे (हिरण्य–रूपं) ज्योतिः स्वरूप (अग्निम्) अग्नि–देव का (तनयित्नोः) शरीर को विकसित कर रही जीवन–विद्युत् के (अचित्तात्) अचेत हो जाने से (पुरा) पूर्व (अवसे) अपनी रक्षा के लिए (आ कृणुध्वम्) चारों ओर पहरा बैठा लो।

आज पृथिवी तथा आकाश दोनों से रोने की आवाज आ रही है। जमीन आसमान व्यथा की तसवीर–सी बन रहे हैं। एक करुण क्रन्दन है जो पृथिवी तो पृथिवी, संपूर्ण ग्रहों, उपग्रहों पर छा रहा है। तारों की आँखों में आँसू हैं, कलियों के कपोल ओस से तर हैं। फूल की छाती पर घाव है। हवा के ओठों पर ठंडी साँसों का ताँता–सा बँध रहा है। बात क्या है? इस नाचते–कूदते ब्रह्माण्ड की हवेली में आज शोक–सभा का समारंभ क्यों है?

ब्रह्माण्ड की सत्ता खतरे में है? अणु–अणु को संयुक्त कर संसार की सत्ता को यज्ञ का रूप देने वाला ''सत्ययज'' अग्नि–देव आज रो रहा है। रो–रो कर हमें पुकार रहा है। उसका यज्ञ हमारी आहुति के बिना आगे नहीं चलता। हमारी सत्ता कुछ बहुत बड़ी नहीं। विश्व में हमारी हैसियत ही क्या है? परन्तु यज्ञ में तो छोटे से छोटे पदार्थ का भी एक विशेष महत्व है। यज्ञ किसी तुच्छ से तुच्छ सामग्री के बिना भी अधूरा है। पूर्ण यजमान अपने यज्ञ को अपूर्ण रहता देखकर दुःखी है।

मानव बन्धुओ! आओ, हम अग्नि–देव की इस तीव्र पुकार को सुनें। देखो तो सही, इस रो रहे खिलाड़ी का रूप कितना सुन्दर है। अत्यन्त रमणीय, अत्यन्त हितकारी। देखकर आँखों को तरावट मिलती है तो दर्शन–मात्र ही से हृदय को एक अपूर्व उत्साह प्राप्त होता है। इस ज्योति–स्वरूप की चितचोर ज्योति हमें अपने वश में किए जा रही है। हित रमणीय ज्योति का पुतला रो क्यों रहा है? भला खेल में रोने का क्या काम? इसका खेल बिगड़ा चाहता है। इसने सूर्य बनाया, तारे बनाए, चाँद बनाया, पृथिवी बनाई, इसलिए कि जीव–जाति इनमें रमण करे, जीव–जाति का शिरोमणि मनुष्य खेल से असहयोग कर रहा है। यह खेलता है पर इसकी क्रीड़ा की पुकार शुद्ध नहीं। अग्नि देव अब खेले तो किसके साथ? यज्ञ का राजा आज रंक है, क्योंकि प्रजा उससे विद्रोह कर रही है। राज्य–लीला में उसका साथ नहीं देती।

मनुष्य बन्धुओ! अग्नि–देव का करुण–क्रन्दन तुम्हें सचेत नहीं करता। क्या तुम्हें यह भी पता है कि यदि तुम अग्नि की पुकार पर भी सचेत न हुए तो फिर सचेत होने का अवसर ही न रहेगा? तुम्हारी जीवन–अग्नि अग्नि देव ही की देन है। तुम्हारी त्वचा के नीचे वात–संस्थान है। इसमें अत्यन्त सूक्ष्म तन्तुओं का जाल है जो अन्दर–बाहर सारे शरीर पर छा रहा हे। सूर्य के ताप की बिजली इन तन्तुओं को छूती है। इससे ये क्रमशः सिकुड़ते और फैलते हैं। इसी सिकुड़ाव और फैलाव का फल हृदय, जिगर, फेफड़ों आदि का सिकुड़ना और फैलना है। शरीर के सारे व्यापार उस विद्युत् ही की करामात हैं जो सूर्य की किरणों की कृपा से हमारे शरीर में प्रवेश करता है। अग्नि देव 'रुद्र' है। यह रो क्या रहा है, हमारे रुलाने का सामान कर रहा है। सब लोक–लोकान्तर हमारी आनेवाली मृत्यु का पहिले से शोक कर रहे हैं, विश्व–याग में आहुति न देने से विश्व की तो क्षति होगी या न होगी, हमारी जीवन–विद्युत् अवश्य अचेत हो जायेगी। यह चिंगारी जहाँ आग से अलग हुई, वहाँ बुझ जायेगी।

मानव भाईयो! आओ, इस विद्युत् के विलुप्त होने से पूर्व हम अपने जीवन की तार का सम्बन्ध अग्नि–देव के बिजलीघर से कर लें। हम अपनी चित्ति की चिंगारी आग के बीच ही में रख दें। फिर उसकी आभा सर्वथा सुरक्षित है।

जीवन–ज्योति विलीन तो बिजली की तरह एकाएक हो जायेगी। हम उस अशुभ घड़ी से पूर्व अभी से अपनी अमरता का उपाय ही क्यों न कर लें। अमर जीवन का नुसखा है–यज्ञ। आओ, हम यज्ञ की आग को चमकाएं। हमारे आगे–पीछे, दाएँ–बाएँ, ऊपर–नीचे–सब तरफ आग ही आग हो अर्थात् याग ही याग। यही आग सुहाग है। इसी आग से शरीर की वृद्धि, मन का विकास, आत्मा का उद्धार होता है। ❐❐❐

कोरोना पर कुछ पंक्तियां

❐डॉ० श्वेतकेतु शर्मा, बरेली
(पूर्व सदस्य
हिन्दी सलाहकार समिति
भारत सरकार)

सन्नाटा

राम कृष्ण दयानंद की माटी पर
क्या देख रहा हूं अविरल,
गुजर गई, जिंदगी यों ही
परछाईयां ही हवा हो गईं।
वक्त कटता नहीं, उम्र घटती नहीं
जिंदगी की सांसें गुजरती गईं,
कब सुबह हो गई, दिन का सूरज चढ़ा,
शाम हो कर, निशा भी विदा हो गई।
दिन महीने बीतते चल रहे
परिंदों की आवाज भी धूमिल हो गई
नींद ही नींद में बेहोश हो गई,
चहल-पहल दहशत-वहशत।।
तड़पता गया रात दिन तू यहां,
सारी दुनिया यहीं की यहीं रह गई।
चलते-चलते थमा तू नहीं,
सांस चल-चल के इक दिन
कोरोना की हवा में स्वयं थम गई।
वक्त रहते संभल जा तभी ठीक है
बाद में हाथ कुछ भी बचेगा नहीं।।
सब गंवा दी जो पूंजी यों ही खेल में
यह चोला फिर से मिलेगा नहीं।
एक राह है, महकाओ उपवन को
बनाओ घर को, महकता हुआ उपवन,
पर्यावरण हो शुद्ध, यज्ञ की ज्वाला से
वायरस हो नष्ट, वनौषधियों की महक से,
सन्नाटा हो दूर ऋषि दयानंद के देश से
वेदों का हो गान, यज्ञ हो घर घर में
संस्कारवान् हो परिवार, चरित्रवान् हो युवा
सुगन्धित हो ब्रह्मांड, मन विचार हो पवित्र
आर्यावर्त महके और विश्व को महकाये।
कोरोना भगायें, राष्ट्र को बचायें।।

(Email : shwetketusharma@gmail.com

नरेन्द्र 'सन्तोषी' की रचनाएँ'

❐नरेन्द्र अत्रि 'सन्तोषी'
अध्यक्ष : हिन्दी साहित्य प्रेरक
संस्था व संस्कार भारती, जींद
(9416485209)

मन मैला ना भारी रख।
उस रब का आभारी रख।।
आँखों में भर प्रेम-स्नेह
सूरत भोली प्यारी रख।।
नफरत खुद मर जाती है
प्यार लुटाना जारी रख।।
अहम् बुरा है, बोझ घटा
बस थोड़ी खुद्दारी रख।।
जो करना सो भरना है
खुद की जिम्मेवारी रख।।
देश, धरम से पहले है
इतनी बात हमारी रख।।
तू भी इक मेहमां ही है
चलने की तैयारी रख।।

हे प्रभु! कैसा यहाँ इंसान होता जा रहा है।
जिंदगी में गर्दिशों का खौफ क्यों फैला रहा है।।
धड़कनें सहमी हुई हैं, सांस बोझिल सी लगें अब
मस्तियाँ बेहोश, खुशियों को पसीना आ रहा है।।
ढोलकी की थाप पर आंगन थिरकते थे जहां पर
तोड़ पायल के सभी घुंघरू वहीं बिखरा रहा है।।
थी जहां तब चमचमाती एक गाड़ी की तमन्ना
आज ख्वाबों में निकम्मा रोटियां दिखला रहा है।।
आदमी के वास्ते अब आदमी के ही जिगर में
देखकर खूंखार फितरत भेड़िया शरमा रहा है।।
मौत के बादल उमड़ते लग रहे हैं आसमां में
कौन है नादान जो बेखौफ अब भी गा रहा है।।

घूम फिर के फिर वही गुजरा जमाना आ गया।
किल्लतों में भी हमें अब मुस्कुराना आ गया।।
मुश्किलों में सब दरो-दीवार घर की साथ हैं,
खिड़कियों को भी हमारा गम छुपाना आ गया।।
नाज-नखरे पत्नियों के भी जरा घटने लगे
अब सलीके से हमें भी घर सजाना आ गया।।
हो घरों में कैद, कुदरत से किनारा कर चुके
बूंद छत पर आ कहें, सावन सुहाना आ गया।।
वक्त से आंखें मिलाकर शहंशाहों की तरह
कह दिया- 'अनमोल है, पर जा! लुटाना आ गया'।।
हो गमों का बोझ कितना भी जिगर पे आजकल
फोन पर फिर भी हमें हंसकर दिखाना आ गया।।
सूट, साड़ी, चूड़ियां, पिकनिक व ब्यूटी पार्लर
औरतों को चाहतों का सर झुकाना आ गया।।

हमारा राष्ट्रधर्म

- भारतीय सीमाओं की रक्षा करना
- भारतीय संस्कृति की रक्षा करना
- ऐतिहासिक तथ्यों को न छिपाना
- पुरातन धरोहरों का सुरक्षित रखना
- विदेश में गया धन वापस लाना

प्रो० सत्यनारायण शास्त्री भोपाल

जिस धरती पर हमारे अनंत पूर्वजों ने जन्म लिया, उनका पालन-पोषण हुआ, कर्मक्षेत्र रहा, ज्ञान प्राप्त किया तथा अद्वितीय ज्ञान प्रसारित किया उस धरती की तथा उसके प्राणियों की उत्तरोत्तर उन्नति की चेष्टा करना हमारा कर्तव्य कर्म है। हम भारत देश के वासी हैं। भारतीय सीमाओं और संस्कृति की रक्षा करना तथा उसे भौतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उत्तरोत्तर शक्तिशाली, समृद्ध बनाना हमारा भारत राष्ट्र के प्रति कर्तव्य कर्म है।

भारतीय सीमाओं की रक्षा करना हमारा राष्ट्र धर्म

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि केवल कुछ ही हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष की सीमाएं दूर-दूर तक फैली हुई थीं। तत्पश्चात् हमारी विभिन्न दुर्बलताओं के कारण ये सीमाएं संकुचित होती चली गयीं। सन् १९४७ में फिर एक बार बहुत बड़ा संकुचन (विभाजन) हुआ। बचपन में जब हम कक्षा ६ या ७ में पढ़ते थे, उस समय भारत देश के नक्शे में वर्मा, बांग्लादेश, लंका तथा पाकिस्तान विद्यमान थे। हमें भारत का वही नक्शा सिखाया जाता था। परंतु अभी पिछली शताब्दी में ही हमारे देखते-देखते ये सभी भारत से अलग देश हो गए। भारत देश के संकुचन की यह प्रक्रिया पिछले कुछ वर्षों से अनवरत रूप से चल रही है। स्थिति भयावह लगती है। प्रश्न यह उठता है कि क्या देश की सीमाओं के संकुचन को रोका नहीं जा सकता था? यह एक गंभीर प्रश्न है। इस प्रश्न पर विचार करना व संकुचन की पुनरावृत्ति न होने देना हमारा राष्ट्रधर्म है। हमारा मानना है कि परिस्थितियों का आकलन यदि ठीक प्रकार दूरदृष्टि से किया गया होता, स्वार्थ व अहंकार न देखा होता तो वे स्थितियां ही नहीं बन पातीं, जिन्होंने देश की सीमाओं को संकुचित किया।

यह दुर्भाग्य अभी भी थमा नहीं है। भविष्य में देश की सीमाओं का और अधिक संकुचन होने का खतरा मंडरा रहा है। यदा-कदा यह भी सुनने और पढ़ने में आता है कि भारत के बड़े भू-भाग से प्रशासन का अधिकार समाप्तप्राय: है। कुछ भाग सैनिकों द्वारा नियंत्रित हो रहे हैं। यह भारत देश सिकुड़कर अब कितना रह गया है, इसकी चिंता हम सब को होनी चाहिए। हम सभी का यह राष्ट्रधर्म है कि हम उन परिस्थितियों का जन्म न होने दें, जो देश विभाजन कराती हैं, देश को कमजोर करती हैं और विदेशी सत्ता को भारत में घुसने का अवसर प्रदान करती हैं।

भारतीय संस्कृति की रक्षा करना हमारा राष्ट्रधर्म

भारत की संपूर्ण भूमि हमारी आत्मा है। इस भूमि पर जिस महान संस्कृति का उद्भव एवं पल्लवन हुआ है वह बहुत महत्वपूर्ण है। उसकी रक्षा करना हमारा राष्ट्र धर्म है। प्रारंभ में केवल वैदिक संस्कृति का ही अस्तित्व था, जो लाखों लाखों साल अपने पूर्ण गौरव के साथ विद्यमान रही, किंतु कालांतर में जब मनुष्यों के अंत: करणों में मनोवांछित विचारों का आगमन हुआ, वासनाओं का प्रकोप बढ़ा, कुतर्कों को अधिक महत्व दिया जाने लगा, रीति रिवाज बदलने लगे- तब अन्य मतों का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें कुछ विचारधाराएँ अपने को शांत न रख सकीं। वे अपनी मान्यताओं को अधिक प्रचारित करने की लालसा में ऐसे क्रियाकलापों में संलग्न होने लगीं जिसने समाज में वैमनस्य फैलाया।

हम उन चेष्टाओं को समझें तथा उसके दूरगामी परिणामों को भी जानें। हमें दुष्ट प्रवृत्तियों को रोकने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना होगा। भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखना तथा उसका पालन करते रहना हमारा राष्ट्रधर्म है।

सदियों की परतंत्रता के कारण भारतीय संस्कृति की शाब्दावलियों (अर्थात विभिन्न नामों एवं पहचानों), रीति-रिवाजों, खानपान, वेशभूषा आदि में विकृतियां आई हैं। हमारी पुरातन प्रामाणिक चिकित्सा पद्धति एवं स्वास्थ्य की व्यवस्थाओं को क्षीण करने का प्रयत्न किया गया। बहुत से कानून जो विदेशी शासकों ने हमारी परतंत्रता को दृढ़ करने के लिए बनाए थे, वे लगभग सभी आज भी विद्यमान हैं। इन विकृतियों एवं कानूनों की शर्मनाक उपस्थितियों से त्राण पाना हमारा राष्ट्रधर्म है। क्योंकि तभी हमारी स्वतंत्रता पूर्ण होगी, हम वास्तविक रूप से अपने को स्वतंत्र देश के नागरिक कहलाने के अधिकारी होंगे। हमारा राष्ट्रीय स्वाभिमान जाग्रत होगा। हम वीर्यवान् बनेंगे।

ऐतिहासिक तथ्यों को न छिपाना हमारा राष्ट्र धर्म

प्राय: यह देखा जाता है कि शासक वर्ग उन तथ्यों को छिपाने का प्रयत्न करता है जो उनके अपने स्वार्थ सिद्धि के विपरीत हैं, किंतु ऐसे तथ्यों को छुपाना राष्ट्रहित में नहीं

होता। अंग्रेजों ने जब १५ अगस्त १९४७ को भारत छोड़ा और भारतीयों को सत्ता सौंपी तो उन्होंने उस सत्ता का नाम रखा 'शासन के हस्तांतरण का अनुबंध'। परंतु भारतीय नेताओं ने उसे 'स्वतंत्रता' नाम दिया। शासन के उस हस्तांतरण में अंग्रेजों ने कई शर्ते रखीं, जिनमें कुछ शर्तें अपमानजनक भी थीं। परंतु फिर भी भारतीय नेताओं ने उन्हें स्वीकारा और देशवासियों को उन से अवगत नहीं कराया।

पिछले लगभग २००० वर्षों से हम विदेशी आक्रमणकारियों को झेलते रहे हैं। उनके बहुत से कारनामों एवं अत्याचारों से आधुनिक भारतीय मानस अभी भी परिचित नहीं है। ऐतिहासिक तथ्यों को– वे चाहे कितने ही कटु क्यों न हों, जानना हमारा राष्ट्र धर्म है। आजकल स्थिति यह है कि देश में बहुत कुछ ऐसा भी घटता रहता है जिस की सत्यता को कुछ महत्वपूर्ण लोगों द्वारा छुपाया जाता है। असत्य बातों पर प्रचार माध्यमों द्वारा सत्यता का झूठा आवरण पहनाने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसे क्रियाकलाप अंततोगत्वा देश हित में नहीं होते, राष्ट्र धर्म के विरुद्ध हैं ।

पुरातन धरोहरों का सुरक्षित रखना हमारा राष्ट्रधर्म

आधुनिक युग में मनुयों के मन बहुत विचलित हुए हैं, महत्वाकांक्षाएँ बढ़ीं एवं बदली हैं, प्रलोभन बहुत हो गए हैं, ध्येयों में स्थिरता नहीं रही, धैर्य का अभाव है, तृष्णा बहुत बढ़ रही है, श्रद्धा क्षीण हो चली है। कुतर्कों का साम्राज्य बढ़ा है। स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य कुछ भी करने को उद्यत है। पुरातन गौरवशाली धरोहरों की बलि देने को तत्पर है। इनका एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि पुरातन सिद्धांतों एवं धरोहरों पर शंकाएँ व्यक्त की जा रही हैं और उनकी यथार्थता को नकारा जाने लगा है। इन प्रतिक्रियाओं को प्रगतिशील विचारों के अंतर्गत समझा जाने लगा है। जिन ऐतिहासिक धरोहरों की सत्यता के विषय में लाखों साल तक किसी ने शंका नहीं की थी, आज उन्हीं को कुछ लोग काल्पनिक मान बैठे हैं। हमारी पुरानी धरोहरों में भारतीय संस्कृति के तथ्य हैं, हमारी पौराणिक गाथाओं के प्रत्यक्ष रूप हैं, हमारे अलंकार (आभूषण) हैं, इसलिए उन्हें सुरक्षित रखना हमारा राष्ट्र धर्म है।

विदेश में गया धन वापस लाना हमारा राष्ट्रधर्म

भारतीय अनैतिक व्यक्तियों ने जो धन विदेशों में जमा कर रखा है, उसे भारत वापस आना चाहिए। यह खनिज पदार्थों और भ्रष्टाचार के माध्यम से एकत्र किया हुआ धन है। दुर्भाग्य की बात यह है कि भारत की सरकारें इन घटनाओं के प्रति उदासीन रही हैं। इसका कारण स्वार्थ एवं भय है। विदेशी आक्रमणकारियों व शासकों ने भी भारत का बहुत सा धन= सोना, हीरे–जवाहरात इत्यादि के रूप में लूटा है। उन्हें भारत वापस आना चाहिए, क्योंकि कोई नहीं चाहेगा कि उसके घर का लुटा हुआ धन उसे वापस न मिले। धन के विदेश जाने का आजकल एक अन्य प्रचलित साधन है –व्यापार। इस पर भी हमने गंभीरता से विचार नहीं किया है। स्वदेशी संपदा का बहिर्गमन होने से भ्रष्टाचार बढ़ता है, देश निर्धन होता है तथा राष्ट्र असंरक्षित हो जाता है। इसलिए स्वदेशी संपत्ति को विदेशों में न जाने देना और जो चला गया है, उसे वापस लाना हमारा राष्ट्रधर्म है।

महाशय श्रीपाल आर्य को स्वास्थ्य लाभ

परिजनों से प्राप्त जानकारी के अनुसार पूज्य महाशय श्रीपाल जी आर्य मिशनरी के स्वास्थ्य में संतोषजनक लाभ हुआ है। वे गत २३ अगस्त को जयपुर से सघन चिकित्सा और शल्यचिकित्सा के पश्चात् बड़ौत लौट आये हैं। जैसा कि विगत अंक में सूचना दी गई थी कि महाशय जी को गंभीर अवस्था में जयपुर ले जाया गया था। उनके स्वास्थ्य के संबंध में उनके श्रद्धालुओं को बहुत चिन्ता हो रही थी। इसी क्रम में उनके स्वास्थ्य की कामना के लिए हवन प्रार्थनाएँ की गईं। उनके बड़ौत लौटने पर बागपत से श्री जसपाल राणा आदि सहित देशभर से वरिष्ठ आर्यसमाजी व राजनैतिक नेताओं ने दूरभाष आदि के माध्यम से उनके स्वास्थ्य लाभ पर हर्ष व्यक्त किया और शीघ्र उनके पूर्ण स्वस्थ होने की कामना की। अद्यतन जानकारी के लिए महाशय जी के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री देवेन्द्रकुमार आर्य एडवोकेट (94121 00967) बागपत व महाशय जी के सुपौत्र श्री सत्यव्रत आर्य बड़ौत (9634430498) से सम्पर्क किया जा सकता है।

गद्दार कौन? जयचन्द या जाफर?!

❒राजेशार्य आट्टा (पानीपत) ९९९१२ ९१३१८

प्रिय पाठकवृन्द! आजकल मोबाइल इंटरनेट आदि के कारण जितना ज्ञान का विस्फोट हुआ है, अज्ञान भी उसी गति से बढ़ा है। इनके माध्यम से फैली अफवाहें देश में दंगे भड़काने में सहयोगी हो रही हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर छोटा बड़ा कोई भी, किसी भी व्यक्ति का चरित्रहनन कर देता है। इसके चलते प्रधानमंत्री जैसा आदरणीय व्यक्तित्व भी व्यर्थ आलोचना से नहीं बच पाया है। हमारे देश की राजनीति में विपक्ष की भूमिका सत्ता पक्ष के हर अच्छे बुरे कार्य का विरोध करने तक रह गई है। इसके लिए हम देश के हित-अहित की कोई चिंता नहीं करते। विदेशी घुसपैठिए रोहिंग्याओं को देश से निकालने की बात हो या पड़ोसी मुस्लिम देशों के उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों/ हिंदुओं को भारत में शरण देने की बात हो; सभी जगह विपक्ष राष्ट्र-द्रोहियों के साथ खड़ा दिखाई दिया। पाकिस्तान व चीन की मनमानी के विरुद्ध भारत की सरकार के नेतृत्व में भारतीय सेना द्वारा दिए गए मुंह तोड़ जवाब को नीचा दिखाने में भी विपक्ष नहीं शरमाया, जबकि उसका यह कार्य सीधा-सीधा शत्रु की सहायता करने वाला है। इससे भी बढ़कर पीड़ादायक बात यह है कि देश के लिये अपने प्राणों की आहुति देने वाले क्रांतिकारी भी इस दलगत राजनीति का शिकार होते रहे हैं।

वर्षों से देश की राजनीति में घूम फिर कर एक विषय आता रहता है- वीर सावरकर का विरोध। यद्यपि वीर सावरकर को संसार से गए हुए लगभग आधी शताब्दी (५४ वर्ष) बीत चुकी है, पर भारत के कई राजनीतिक दल आज भी उनसे भयभीत हैं। उनके जीवनकाल में अंग्रेज उनसे भयभीत थे। तभी तो अंग्रेजों ने उन्हें १४ वर्ष जेल में व १३ वर्ष नजरबंदी में रखा। राजनीति में भारतीयों का प्रतिनिधित्व करने वाली कांग्रेस पार्टी ने तब भी उनसे विरोध रखा। देश स्वतंत्र होने के बाद नेहरू सरकार ने उस स्वतंत्रता सेनानी को उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश किया। मरने के ५४ वर्ष बाद भी सावरकर पर नए नए आरोप लगाकर विरोधी लोग अपनी दु:खी आत्मा को शांति दे रहे हैं। शायद गालियों की सीढ़ी पर चढ़कर वे सत्ता पर सवार होना चाहते हैं। वर्षों से वीर सावरकर को अंग्रेजों से माफी मांगने वाला, गांधीजी का हत्यारा, हिंदू मुस्लिम में विद्वेष पैदा करने वाला आदि प्रचारित किया जा रहा है। अब वे कारतूस फुस्स हो गए तो सावरकर के खानपान की आलोचना करने लगे, उन पर अंग्रेजों से पेंशन लेने का आरोप लगाने लगे। सोचिए, यदि सावरकर में ये दोष थे तो क्या अब उनमें बदलाव संभव है? और भारत सरकार ने उन्हें भारत-रत्न जैसा कोई सम्मान भी तो नहीं दिया था, जिसे उन अपराधों के कारण सावरकर से वापस लिया जाए। उन्हें तो जब्त हुई अपनी संपत्ति भी वापस नहीं मिली थी।

सरकारी सम्मान की तो छोड़िये! नेहरू सरकार का जहां तक बस चला, उसने देश की जनता द्वारा अपने हृदय सम्राट स्वातंत्र्य वीर को दिया जाने वाला मान-सम्मान भी नहीं देने दिया। गांधी हत्या केस से ससम्मान मुक्त होने पर देशभक्त जनता ने वीर सावरकर की शोभा यात्रा निकालनी चाही तो सरकार ने मना कर दिया। सरकार की इच्छा अनुसार दिल्ली के मजिस्ट्रेट ने सावरकर के लाल किला से बाहर जाने पर प्रतिबंध लगा दिया। साथ ही तीन मास तक उनके दिल्ली में प्रवेश तथा निवास पर प्रतिबंध लगाकर पुलिस की गाड़ी से रेलगाड़ी में बैठाकर सावरकर को मुंबई भेज दिया गया।

मुंबई विधानसभा में श्री राम भाऊ मांडलिक ने अंग्रेजों द्वारा जब्त की गई सावरकर की संपत्ति (उनके बलिदान को देखते हुए) उनके परिवार को वापस करने की बात कही तो मुंबई के तत्कालीन गृह मंत्री मोरारजी देसाई ने उत्तर दिया- 'सावरकर की विगत सेवाओं से उसका वर्तमान कार्य अत्यंत निंदनीय है, अत: उनकी संपत्ति वापस नहीं की जा सकती।'

पाठक सोचते होंगे कि गांधीजी जैसे महात्मा के हत्यारों के प्रति ऐसा व्यवहार करके सरकार ने कोई गलत नहीं किया, तो ऐसे लोगों को न्यायाधीश श्री आत्माचरण के शब्द याद करने चाहिएं- 'सावरकर ने देश के लिए बहुत कुछ झेला है, इस बात की जांच होनी चाहिए कि उनका नाम इस केस में कैसे आया।'

इस विवाद को यहीं छोड़ कर हम १९३७ ईस्वी में चलते हैं जब वीर सावरकर को नजरबंदी से मुक्त किया गया था। तब तो सावरकर का नाम किसी महात्मा के हत्यारों में शामिल नहीं था। जब श्री एन सी केलकर, भाई परमानंद,

राजगोपालाचारी, सुभाषचंद्र बोस जैसे महान नेता वीर सावरकर का सम्मान कर रहे थे, तब गांधीजी व गांधीवादी लोग सर्वथा मौन रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने सावरकर के स्वागत समारोह का बहिष्कार किया। उन्हें काले झंडे दिखाए। कई स्थानों पर तो उन्हें मारने पीटने के लिए भाड़े के गुंडे तैयार किए गए थे। यही कारण था कि सावरकर जी ने अपनी शोभायात्रा पर बरसने वाले पत्थर व जूतों से बचाव के लिए मोटर गाड़ी के अंदर लोहे का बना बड़ा छाता रखवाया था। बार्शी (महाराष्ट्र) में 'कालापानी' भुगत कर आया गुंडा तो सावरकर को देखते ही नतमस्तक होकर बोला- अरे, ये तो हमारे 'बड़े बाबू' हैं। अंडमान में इन्होंने ही हमें पढ़ना सिखाया। हट् हट् साला!! कौन मारता है इन्हें, मैं देखूंगा!

वीर सावरकर गांधी जी व कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण व अंग्रेजों के प्रति नरम (मित्रता के) रवैये के विरोधी थे। यही कारण है कि उन्होंने नजरबंदी से मुक्त होने के बाद कांग्रेस में न जाकर हिंदू महासभा की सदस्यता ली। इससे पूर्व सावरकर की नजरबंदी से मुक्ति के आवेदन पत्र पर हस्ताक्षर करवाने के लिए जब उनके प्रशंसक गांधीजी के पास गए तो गांधीजी ने कहा- 'मैं नहीं जानता कि यह कौन सा सावरकर है?' फिर पूछा- 'क्या यह वही सावरकर है जिसने द 'इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस १८५७' लिखी है? सावरकर की मुक्ति देश के हित में नहीं है।'

सोचिए, सावरकर के प्रति घृणा व विरोध की भावना कांग्रेस के नेतृत्व में कितनी गहरी थी! सावरकर ही क्यों, नेताजी सुभाष को भी तो इसी मानसिकता के कारण कांग्रेस के अध्यक्ष का पद छोड़ना पड़ा था। उन पर तो सावरकर वाले कोई आरोप नहीं थे। यदि सावरकर पर लगाए गए नए पुराने सभी आरोप सत्य भी हों तो भी उनसे देश का इतना बड़ा नुकसान नहीं हुआ जितना भारत का बंटवारा स्वीकार करने वालों के कृत्य (लाखों हिंदू-मुस्लिमों का संहार व पलायन) से हुआ। एक तिहाई कश्मीर पर पाकिस्तान का अधिकार करवाने, तिब्बत को खोने, कश्मीर समस्या को जान बूझकर नासूर बनाने, गौ हत्या जारी रखने, मंदिरों पर बनी मस्जिदों को हिंदुओं को न सौंपने जैसे ढुलमुल नेतृत्व के कारण हुआ। फिर वह नेतृत्व 'भारतरत्न' बन गया। उनसे भारतरत्न वापस लेने की बात किसी ने नहीं की और सावरकर पर आरोप लगाया कि उसने अंग्रेजों से पेंशन ली। यह चर्चा कोई नहीं करता कि स्वतंत्र भारत में देश के शीर्ष नेतृत्व ने उन्हें स्वतंत्रता सेनानी होने की पेंशन भी नहीं दी। बाद में श्री शास्त्रीजी ने ही यह कलंक मिटाया था।

क्या इस बात की चर्चा नहीं होनी चाहिए कि जब बड़े भाई गणेश सावरकर, विनायक दामोदर सावरकर अंडमान-काला पानी की जेल में जीवन-मृत्यु से जूझ रहे थे और नारायण सावरकर भारत की जेल में थे, तब अंग्रेजों द्वारा घर का सारा सामान जब्त किए जाने पर उनके घर की औरतों ने कैसे गुजारा किया होगा? क्या यह चर्चा नहीं होनी चाहिए कि क्रूर अंग्रेजी शासन ने सावरकर बंधुओं के परिवार को उनसे मिलने की अनुमति पांच की जगह आठ वर्ष बाद दी थी। तब तक प्रतीक्षा करते करते सावरकर की माता स्वरूपा भाभी संसार से विदा हो चुकी थी। यदि सावरकर ने अंग्रेजों द्वारा पेंशन ली थी तो यह क्यों नहीं बताया जाता कि उनकी वकालत की डिग्री भी अंग्रेजों ने जब्त की थी और सावरकर को १४ साल जेल में व १३ साल नजरबंदी में भी रखा था। वैसे भी सावरकर ने लुटेरी सरकार से अपना ही बेगार का पैसा लिया होगा। अपने घर में आराम कुर्सी पर बैठकर एसी कूलर का मजा लेते हुए किसी की महानता या निकृष्टता का प्रमाण-पत्र देना सरल है, कुछ दिन उन परिस्थितियों में गुजारकर देखो तो पता चलेगा कि वीरता-महानता कैसे अर्जित की जाती है!

जो यह कहते हैं कि सावरकर को जेल से बाहर आने के लिए आवेदन नहीं करना चाहिए था, अर्थात ५० साल की जेल काटते हुए वहीं मर जाना चाहिए था, वे बताएं कि फिर देश का कौन सा लाभ हो जाता? जो यह कहते हैं कि देश में क्रांति की लहर आ जाती, उन्हें याद करना चाहिए कि जो क्रांतिकारी थे, वे तो सावरकर के जेल में रहते हुए भी क्रांतिकारी कार्य करते रहे और उनके जेल से छूटने (नजरबंदी में भी) पर भी अपना कार्य करते रहे पर सस्ते में देशभक्त होने का सर्टिफिकेट पाने वाले नरम दल वाले बड़ी से बड़ी घटना होने पर भी सत्याग्रह का राग अलापते रहे।

जब खुदीराम बोस जैसे नवयुवकों को फांसी दे दी गई, विष्णु गणेश पिंगले, करतार सिंह सराभा जैसे नौनिहाल फांसी चढ़ा दिए गए तब भी भारत के सैनिक अंग्रेजों के लिए ही लड़ते रहे (प्रथम विश्वयुद्ध)। जब काला पानी जेल में इंदू भूषण फांसी खाकर मर गया, उल्हासकर दत्त पागल हो गया तब कौन सा गांधीवादी क्रांति के पथ पर आकर अंग्रेजों से लड़ा था? जब अमृतसर के जलियांवाला बाग में अंग्रेजों ने हजारों निर्दोष और निहत्थे लोगों को गोलियों से भून दिया तो कोई गांधीवादी क्रांतिकारी बनकर नहीं निकला। यही नहीं, कांग्रेस को अमृतसर का अपना सम्मेलन (२६ दिसंबर १९१९) करने की भी हिम्मत नहीं हुई थी। स्वामी श्रद्धानंद जी ने आगे बढ़कर मोर्चा संभाला था।

सावरकर के बलिदान को नीचा दिखाने के लिए जो लोग भगतसिंह आदि की शहादत को आगे रखते हैं, उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि भगतसिंह व सावरकर दोनों

महान बलिदानियों की परिस्थिति में अंतर था। दिल्ली के असेंबली हॉल में बम फेंकने के बाद गिरफ्तारी देकर भगतसिंह जनता में प्रसिद्ध हो गए थे। वे अपने क्रांति कार्य का औचित्य अदालत में सिद्ध करना चाहते थे, ताकि वह समाचार पत्रों में प्रकाशित होकर देश की जनता तक पहुंचे और उनका बलिदान भी प्रेरक हो सके; जबकि सावरकर काला पानी में बंदी थे। वहां का कोई भी समाचार भारत की जनता तक नहीं पहुंचता था। ऐसी अवस्था में यदि उस नर्क की यातना झेलते झेलते भी वहां मर भी जाते तो उन्हें समुद्र में फेंक दिया जाता या जंगली जानवरों के लिए जंगल में डाल दिया जाता। सैकड़ों मील दूर बैठी भारत की जनता को पता भी नहीं लगता।

यदि वे सौभाग्य या दुर्भाग्य से जीवित रहते हुए वहां अंग्रेजों के लिए बेगार करने के ५० साल बाद या आजादी मिलने पर (३७ साल बाद) देश में वापस आते तो स्वतंत्रता संग्राम में भी क्या योगदान दे पाते? फिर उनका जीवन किस काम का होता? भगतसिंह के ही बलिदान का गुणगान करने वाले कम्युनिस्टों को बताना चाहिए कि भगतसिंह के अंतरंग साथी बटुकेश्वर दत्त लगभग १४ साल (११ साल कालापानी ३ साल भारत) जेल में बिताने के बाद भी उपेक्षित क्यों रहे? स्वतंत्र भारत में भी गुजारे के लिए उन्हें टूरिस्ट गाइड बनकर पटना की गलियों में क्यों धक्के खाने पड़े? उस प्रसिद्ध क्रांतिकारी से भी स्वतंत्रता सेनानी होने का सर्टिफिकेट क्यों मांगा गया? उन्होंने तो जेल से बाहर आने के लिए अंग्रेजों से माफी नहीं मांगी थी।

वीर सावरकर यदि नरक की यातनाएं झेल कर भी जीवित ही बाहर आ गए तो इस देश के कृतघ्न लोगों के पेट में आज भी दर्द हो रहा है, जबकि यह तो अंग्रेजों को होना चाहिए था। इसीलिए तो उन्होंने सावरकर को राजनीति से अलग रखने के लिए १३ वर्ष नजरबंद (रत्नागिरी जिले में स्थानबद्ध) रखा। स्वतंत्र भारत में भी यही तो हुआ। भारत का विभाजन नेहरू जी के हस्ताक्षर से हुआ था न कि सावरकर के। फिर सावरकर को द्विराष्ट्र का जनक कैसे कहा जाता है? पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपए गांधीजी के हठ के कारण नेहरू सरकार ने दिए न कि सावरकर ने। गांधी जी को नाथूराम गोडसे ने मारा था न कि सावरकर ने! पर भारत के प्रधानमंत्री ने सावरकर को दोषी बताकर जेल में डलवाया। निर्दोष होने के कारण ससम्मान मुक्त होने पर भी घर के जज आज भी उन्हें दोषी मानकर सजा दे रहे हैं। उन्हें डर है कि कहीं वे राजनीति में न आ जाएँ। शायद इसी डर से भयभीत हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री ने नेताजी सुभाष चंद्र बोस की तथाकथित मृत्यु के बाद १९७० ईस्वी तक उनके परिवार की जासूसी करवाई थी।

सच हो या झूठ, बढ़ेगा तो वही जिसका प्रचार किया जाएगा। 'घर का भेदी लंका ढाए' सिद्धांत तो सत्य है, पर इसकी आड़ में महात्मा विभीषण को बदनाम किया जाता है। अभी कानपुर में बदमाशों ने ८ पुलिसवालों की हत्या कर दी। बदमाशों को पुलिस की पूर्व सूचना देने में किसी पुलिस सिपाही का ही हाथ बताया जाता है। मीडिया ने उसे 'विभीषण' कहा। रामायण में साफ लिखा हुआ है कि विभीषण तो अपने बड़े भाई रावण को परस्त्री हरण के पाप से हटाकर रावण सहित पूरी लंका को विनाश से बचाना चाहता था। रावण ने केवल विभीषण की सलाह ही न मानी अपितु उसे भरी सभा में ठोकर मार कर निकाल दिया। ऐसी अवस्था में धर्मात्मा व स्वाभिमानी व्यक्ति धर्म की ही तो शरण लेगा। उसने राम की शरण में आकर सत्य को जिताया था। वह राज्य की लालसा में वनवासी राम के पास नहीं आया था। अतः उसे देशद्रोही नहीं कहा जा सकता। पर दुष्प्रचार ने विभीषण को गद्दार, विश्वासघाती बना दिया।

इसी तरह कन्नौज के राजा जयचंद को देशद्रोही प्रचारित किया जाता है कि उसने मोहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया व उसकी सहायता कर पृथ्वीराज चौहान को मरवाया, पर आधुनिक शोध के आधार पर यह कहानी झूठी साबित हो चुकी है। दूसरी ओर सभी इतिहासकार मानते हैं कि अफगानिस्तान के लुटेरे आक्रमण कारी अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाने वाले व मराठों को हराने के लिए उसका सहयोग करने वाला (१७६१ ई०) ही नजीबुद्दोला था, जिसने मराठों के मित्र अवध के नवाब शुजाउद्दौला को भी मजहब की दुहाई देकर आक्रमणकारी के पक्ष में कर लिया। फिर भी गद्दारों में जयचंद की तरह उसका नाम नहीं दिया गया, क्योंकि सत्य जानने वाले चुप रहे।

अंग्रेजों को भारत में पैर जमाने का अवसर दिया था– प्लासी की लड़ाई (१७५७ ई०) की जीत ने। बंगाल के नवाब सिराजुद्दोला के सेनापति मीर जाफर ने पहले ही अंग्रेजों से गद्दी के लिए गुप्त समझौता कर लिया था, जिसके

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य

वैदिक धर्म की सार्वभौमिकता

लेखक–श्री पं० दा० सातवलेकर जी

'वैदिक धर्म' सब भूमण्डल पर था, यह बात निर्विवाद रीति से निम्न स्थान में लिखे हुए स्थानों के नामों से सिद्ध हो सकती है। पाठक इन स्थान–नामों का विचार करें–

स्वीडन में

Vedstena- वेदेस्तेन–वेदस्थान
Vaddo- वेदो–वेद
Boda- वोद–वेद
Vetland- वेतल्यैंड–वेदभूमि
Edsele- एद्सेले–वेदशाला
Vittaugo- वित्तांग–वेदांग
Hven- ह्वेन–हवन
Roso- रोसो–ऋषि
Som- सोम–सोम (सरोवर)
Braman- ब्रामन–ब्राह्मण
Hkzo- ह्जो–यजु:
Ingarc- इंगरो–अंगिरा:
Ume- उमे–उमा (नदी)

नार्वे में

Vedo- वेदो–वेद
Vedheim- वेधेइम=वेदधाम
Bodo- बोदो=वेद
Edo- एदो=वेद
Stensrud- स्टेनश्रुद–(यहां यह उलटा हुआ है)
Srud-sten- श्रुद–स्तेन–श्रुतिस्थान)
Snehaetta- स्नेहाएत्ता=संहिता
Rise- रिसे=ऋषि
Rissavarre- रिस्सबर=ऋषिवर
Havstein- हबस्टेन=हविस्थान
Mandal- मंडल=मण्डल (ऋग्वेद के विभागों का नाम)
Sotra- सोत्र=सूत्र
Surteberg- सुर्तेवर्ग=श्रुतिपुर
Soroy- सोरय=सूर्य
Vpss- वोस=व्यास
Enger- एंगर=अंगिरा:।
Otra- ओत्र=अत्रि
Driva- द्रिब–ध्रुव
Ombo- ओम्बो=आम्बा

डेन्मार्क में

Bedsted- वेदस्टेड–वेदस्थल
Wedsted- वेद स्टेड–वेद स्थल
Boto- बोतो–वेद
Vederso- वेदर्षो–वेदऋषि
Vid- बिंद–वेद (नदी)
Hoven- होवेन्=हवन
Norde Rose- नोर्दे रोसे=नारद ऋषि
Darum- दरुम=धर्म
Tarm- तर्म=धर्म
Hojer- होजेर=यजु:
ZKalo- कालो=काल
Emb- एम्ब=अम्बा
Bov- बोव=भव (शिव का नाम)
Harre- हरे=हरि, हर
Mano- मनो=मनु (द्वीप)
Soro- सूरो=सूर्य
Vestero- वेस्टेरो–विष्टर
Veno- वनो=वेन
Bromme - ब्रम्मे=ब्रह्म

जर्मनी में

Weida- वेइद=वेद
Schwerte- शेर्ते=श्रुत
Riesa- रिसा=ऋषि
Enger- एंगर=अंगिरा

तुर्कस्थान में

Angora- अंगोरा=अंगिरा
Ankora- अंकोरा–अंगिरा
Homa- होम=सोम, हवन
Soma- सोम=सोम
Kale- काले=काल
Rejhe- रिझे=ऋषि
Ganos- गनोस=गणेश
Genasa- गनस=गणेश
Kushk- कुश्क=कुशिक

Sukaria- सुकरिया–शुक्र
रूस में
Veta- वेत=वेद
Samoyedes- सामयेदस्=सामवेद:
Sorot- सोरोत=श्रुत
Rusa- रूस=ऋषि
Moksha- मोक्ष=मोक्ष (नदी)
Usa- उसा=उषा
Viaz- वियाज=व्यास
Nerekhta- निरेक्त=निरुक्त
Oma- ओमा=उमा
Gori- गोरी=गौरी
Yug- युग=योग
Sura- सूर=सूर्य, सुर
Polist- पोलिस्त=पुलिस्त
Ussa- उस्सा=उषा

इस तरह अपने नाम यूरोप के सभी देशों में है। इतने ही हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिये। वास्तव में हजारों ग्राम नाम, पर्वत नाम, नदी नाम यूरोप के देशों में हैं। यह थोड़े से नमूने के लिये दिये हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन समय में आर्य वैदिक सभ्यता सब देशों में थी। अथवा वैदिक सभ्यता जिनकी थी, ऐसे आर्य लोगों ने इन देशों में जाकर बस्ती की थी।

मनुष्यों के नामों में भी संस्कृत शब्द सहस्रों हैं Hindr son, Underson यह 'इन्द्रसुनू' है। Ugales आंग्लेस् यह 'आंगिरस्' है। Haris यह 'हरि' है। कृष्ण का करसन तो भारत में भी हुआ है। गुजरातियों में जाकर ब्नत्रमद (?) हुआ। भारत का गवर्नर जनरल लार्ड कर्झन था, वह लार्ड कृष्ण ही (नाम) था। बहुत वर्षों के पूर्व कोई कृष्ण नाम आर्य यूरोप में गया था, वही इस नाम का जनक है।

Columbia कोलम्बिया अमेरिका में है। यूरोपीयनों ने अपने साथ यह नाम अमेरिका में पहुंचाया। 'कालअम्बा– ईय' (काल) शिव (अम्बा) पार्वती (ईय) द्वीप अर्थात् कोलम्बिया। यह शिवपार्वती का देश है।

ईय यह पद द्वीप, दीप, ईय इस तरह द्वीप से बनता है। यूरोप के स्थान नामों में अनेक नाम 'इय' प्रत्ययान्त हैं। यह द्वीपवाचक है।

रूस में नामों के अन्त में 'आह्व' आता है। मोलोटोह्व, वेरेशिलाह्व आदि मनुष्य नामों के अन्त में 'आह्व' है वह शुद्ध संस्कृत है। 'इस नाम का वाचक' अर्थ में 'आह्व' संस्कृत में प्रयुक्त होता है। वही रूसी भाषा में सैकड़ों मनुष्य नामों में आज प्रयुक्त होता है।

वेरेशीलाह्व= वीर शीलाह्व (यह रूसी सेनापति का नाम है। आह्व प्रत्ययान्त नाम रूस में सैकड़ों मनुष्यों के हैं और यह शुद्ध संस्कृत पद उधर जाकर रहा है।

ये पद अथवा शब्द यूरोप अमेरिका में कैसे, कब और किस ओर से गये, यह विषय अन्वेषणीय है। सब देशों के भूगोल वर्णन सामने रख कर सब देशों के नामों की खोज करनी चाहिये। यह कार्य ५० वर्ष पूर्व पूना के इतिहासाचार्य राजवाडेजी ने प्रारम्भ किया था। परन्तु उनकी अकाल मृत्यु से वह कार्य अधूरा ही पड़ा है।

यह कार्य श्री गोपाल आचवल, (५३१ मेहुणपुरा, शनिवार पेठ, पूना) इन्होंने गत तीस वर्षों से शुरू किया है। पेंशन लेकर ये विद्वान् दिन–रात इसी में लगे रहते हैं और सहस्रों नामों के विषय में इन्होंने अच्छी खोज की है। इनका ग्रंथ 'विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति' प्रथम भाग (मूल्य १५/–) प्रकाशित हुआ है। इसके ५०० पृष्ठ हैं और मराठी भाषा में यह ग्रंथ है। इसका दूसरा भाग भी छप रहा है।

इसके पूर्व भी अंग्रेजी में कई ग्रंथ प्रकशित हो चुके हैं, उनमें ये दो ग्रंथ उल्लेखनीय हैं– Oriental fragments यह ग्रंथ एडबर्ड मूर का सन् १८३४ में लंदन में छपा है। इसमें ग्रीस, अफ्रीका, इंग्लैंड, आयरलैंड, उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, आइसलैंड, आदि देशों के ग्राम, पर्वत, नदी आदि के नाम संस्कृत ही हैं, यह स्पष्ट रूप से बताया है। सवा सौ वर्ष पूर्व अंग्रेजी विद्वान् की यह खोज सचमुच वर्णन करने योग्य है। यह ग्रंथ ऐसी खोज करने वालों के लिये बहुमूल्य है।

श्री ई० पोकाक का India in Greece यह ग्रंथ सन् १८५२ में लंदन में छपा है। आज १०२ वर्ष इसको प्रकाशित होकर हो गये हैं। भारत के पलाश देश से ग्रीस में जा कर लोग बसे थे, यह इस ग्रंथ में पाठक देख सकते हैं। खोज के लिये यह ग्रंथ बड़ा उपयोगी है।

सौ सवा सौ वर्षों से यूरोपियन लोग भी मानने लगे थे कि यूरोप में भारतीय आर्य आ बसे थे। इसी खोज से ये ग्रंथ निर्माण हुए हैं।

निष्पक्ष खोज करने वाले इस कार्य को करेंगे तो बहुत ज्ञान प्राप्त हो सकता है। ऋषियों, देवताओं और प्राचीन आर्य राजाओं के नाम सब देशों के नामों में मिलते हैं। यह खोज जब पूर्ण होगी तब प्राचीन भारत के गौरव पर बहुत ही प्रकाश पड़ेगा। विद्वान् लोग इस खोज का कार्य करने के लिये आगे आ जाएं, इसलिये यह लेख लिखा है। सब देशों में 'वेद' के नाम मिलते हैं। ये क्यों मिलते है। ये

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

छत्रपति शाहू जी महाराज, वैदिक विद्यालय और स्वामी दयानन्द

❑डॉ० विवेक आर्य

स्वामी दयानन्द से प्रेरित शाहू जी महाराज का नाम लेने वाले स्वयंभू नेता उनके आचरण और विचार का अनुकरण नहीं करते। शाहू जी और उनके पुत्र ने छुआछूत का प्रतिकार वैदिक धर्म की निंदा कर नहीं किया था, अपितु उन्होंने इस समस्या के मूल पर प्रहार किया।

स्वामी दयानन्द को नवजागरण का पुरोधा कहा जाता है। यह पूर्णतः ठीक भी है। जिस समय उनका आगमन हुआ, उस काल में देश में छुआछूत की बीमारी अपनी चरम सीमा को छू रही थी। जन्मना ब्राह्मण चाहे अनपढ़ और गुणविहीन ही क्यों न हो, सम्मान का पात्र समझा जाता था और जन्मना शूद्र चाहे सुपठित और गुणवान ही क्यों न हो, तिरस्कार का पात्र समझा जाता था। स्वामी दयानन्द के क्रांतिकारी चिंतन ने सदियों से जमी छुआछूत की धूल को उड़ा दिया। स्वामी जी ने प्राचीन काल में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था का प्रचार किया जिसके अंतर्गत किसी भी व्यक्ति की शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् उसके गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार ही उसके वर्ण का निर्धारण होता है, जन्म से नहीं। ठीक जैसे आजकल शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् ही किसी को डिग्री मिलती है।

स्वामी दयानन्द ने शूद्रों सहित मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने, गायत्री का जाप करने यज्ञोपवीत धारण करने, संस्कार करने और करवाने का शास्त्रानुमोदित अधिकार दिया। जब उन्होंने यह प्रचार आरम्भ किया, तब यह असंभव सा कार्य था। स्वामीजी के अनेक अनुयायियों को इस कारण अनेक कष्ट सहने पड़े। उनके सुधार वादी विचारों से अनेकों ने समाज सुधार करने का संकल्प भी लिया। ऐसे ही एक समाज सुधारक थे- छत्रपति शाहू जी महाराज। आप कोल्हापुर रियासत के स्वामी थे। आज आपको डॉ० भीमराव राम अम्बेडकर के मार्गदर्शक, सहयोगी के रूप में जाना जाता है। आपने अपनी रियासत में दलितोद्धार के अनेक कार्य किये। दलितों को शिक्षित करने के लिए विद्यालय और श्रम कारखाने आदि लगाए थे।

आपके जीवन की एक घटना देना यहाँ आवश्यक है। शाहूजी महाराज हर दिन बड़े सबेरे ही पास की नदी में स्नान करने जाया करते थे। परम्परा से चली आ रही प्रथा के अनुसार, इस दौरान पंडित मंत्रोच्चार किया करते थे। एक दिन मुंबई से पधारे प्रसिद्ध समाज सुधारक राजाराम शास्त्री भागवत भी उनके साथ हो लिए। महाराजा कोल्हापुर के स्नान के दौरान ब्राह्मण द्वारा बोले गए श्लोकों को सुनकर राजाराम शास्त्री अचम्भित रह गए। पूछे जाने पर ब्राह्मण पंडित ने कहा- 'चूंकि महाराजा शूद्र हैं, इसलिए वे वैदिक मंत्रोच्चार न कर श्लोकोच्चार करते हैं।' ब्राह्मण पंडित की बातें शाहूजी महाराज को अपमानजनक लगीं। उन्होंने इसे एक चुनौती के रूप में लिया।

महाराज शाहू के सिपहसालारों ने एक प्रसिद्ध ब्राह्मण पंडित नारायण भट्ट सेवेकरी को महाराजा का यज्ञोपवीत संस्कार करने को राजी किया। यह सन १९०१ की घटना है। जब यह खबर कोल्हापुर के रूढिवादी ब्राह्मणों को हुई तो वे बड़े कुपित हुए। उन्होंने नारायण भट्ट पर कई तरह की पाबंदी लगाने की धमकी दी। तब इस मामले पर शाहूजी महाराज ने राज-पुरोहित से सलाह ली, किंतु राज-पुरोहित ने भी इस दिशा में कुछ करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। इस पर शाहूजी महाराज ने राज-पुरोहित को बर्खास्त कर दिया। महाराज ने सोचा कि जब जन्मना ब्राह्मण अभिमान की पराकाष्ठा से मैं भी प्रभावित हुआ हूँ तो मेरी निर्धन और आश्रित प्रजा को धार्मिक संस्कारों के लिए कितना प्रताड़ित किया जाता होगा।

उन्होंने शाहू वैदिक विद्यालय खोलने का संकल्प लिया। इस विद्यालय में गैर ब्राह्मण परिवारों के बच्चों को वैदिक संस्कार और कर्मकांड की शिक्षा देकर उन्हें बिना किसी जन्म भेदभाव के वैदिक संस्कार करवाने के लिए नियुक्त किये जाने की योजना बनी। शाहूजी के मन में यह योजना थी कि समाज का धार्मिक उत्थान राज्य प्रबंध से होना चाहिए। यह योजना आर्यसमाज की गुरुकुल शिक्षा पद्धति से प्रभावित थी। स्वामी दयानन्द रचित सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार बिना भेदभाव के समान सुविधाएँ देकर सभी को शिक्षा देने की समुचित व्यवस्था करना राजा का कर्तव्य है। ६ मई १९२२ को शाहू जी के निधन से उनकी यह मनोकामना पूरी न हो पाई।

१ अगस्त १९२२ को जो मातोश्री महारानीसाहेब के हाथों से जो संस्थान खोला गया था वह राज्य और उसके बाहर के लोगों के लिए भी था। 'श्री शाहू वैदिक विद्यालय' के नाम से खोले गए इस संस्थान में राज्य और उसके बाहर के सभी लोगों के लिए प्रवेश का विधान था। यह जानते हुए कि राजाश्रय के बिना कोई धार्मिक विकास नहीं हुआ, राजाराम महाराज ने यह नई संस्था बनाई और महाराष्ट्र में जनसाधारण के धार्मिक विकास के लिए कार्य किया। आइसाहेब ने श्री शाहू महाराज के स्मारक का उद्घाटन किया। क्षत्रजगद्गुरु ने इस विद्यालय के उद्घाटन पर भाषण दिया। उस भाषण में उन्होंने कुछ शब्दों में धार्मिक स्वतंत्रता के महत्व को रेखांकित किया है, कहा–

श्री शाहू महाराज ने फैसला किया था कि क्षत्रिय को धर्मप्रचार कार्य अपने हाथ में ले लेना चाहिए। शाहू जी वेदों में विश्वास करते थे इसलिए उनकी स्मृति में वैदिक विद्यालय की स्थापना की गई है। महाराज ने मराठाओं को ध ार्मिक स्वतंत्रता देने के लिए संघर्ष किया है और इस कार्य में आज वे सफल हो गए। मातोश्री लक्ष्मीबाई महारानीसाहेब ने भी धार्मिक मामलों में महाराज के साथ कदम से कदम मिलाकर 'सहधर्माचारिणी' शब्द को वास्तविकता बना दिया।

श्री शाहू महाराज का कार्य उनके पुत्र श्रीमंत राजाराम महाराज द्वारा संपन्न हुआ। राजाराम महाराज ने वैदिक स्कूल के लिए अनेक अवसरों पर दान दिया। स्कूल के लिए स्थायी आय सुविधा और विशाल इमारतें प्रदान कीं। आज भी कोल्हापुर में यह वैदिक विद्यालय सुचारु रूप से चल रहा है। शिक्षा प्राप्त करने के बाद इस स्कूल से बाहर गए मराठा पुजारी महाराष्ट्र और कर्नाटक भागों में पुरोहित कार्य करते हैं। अनेक पुजारी आज भी फौजी बलों में भर्ती होते हैं और कोल्हापुर में कई परिवारों में 'शाहू वैदिक विद्यालय' के पुजारी ही धार्मिक अनुष्ठान करते हैं।

पाठक सोच रहे होंगे कि आज के परिप्रेक्ष्य में इस लेख की क्या प्रासंगिकता है! यह लेख आज इसलिए प्रासंगिक है कि शाहू जी महाराज का नाम लेने वाले स्वयंभू दलित नेता उनके आचरण और विचार का अनुकरण नहीं करते। शाहू जी और उनके पुत्र ने छुआछूत का प्रतिकार वेद और कर्मकांड की निंदा कर नहीं किया था। अपितु उन्होंने इस समस्या के मूल पर प्रहार किया।

आज के कथित स्वयंभू नेता उदारता की कमी के चलते युवाओं को भड़काकर उन्हें वैदिक विचारधारा से दूर करने के लिए बरगलाते हैं। जबकि शाहू जी महाराज की स्मृति में स्थापित इस विद्यालय का नाम ही वैदिक विद्यालय था, जो उनके वैदिकधर्मी होने का प्रमाण है। ये नेता यह बात तो बड़े गर्व से बताते हैं कि शाहू जी ने सर्वप्रथम गैर ब्राह्मणों के लिए राज्य व्यवस्था में आरक्षण लागू किया था, मगर यह कभी नहीं बताते कि उन्हें वैदिक धर्म बहुत प्रिय था। ब्राह्मणवाद, मनुवाद चिल्लाकर राजनीतिक हितों को साधने का प्रयास करने वालों को समाज सुधारक और वेदभक्त शाहू जी महाराज से प्रेरणा लेनी चाहिए।

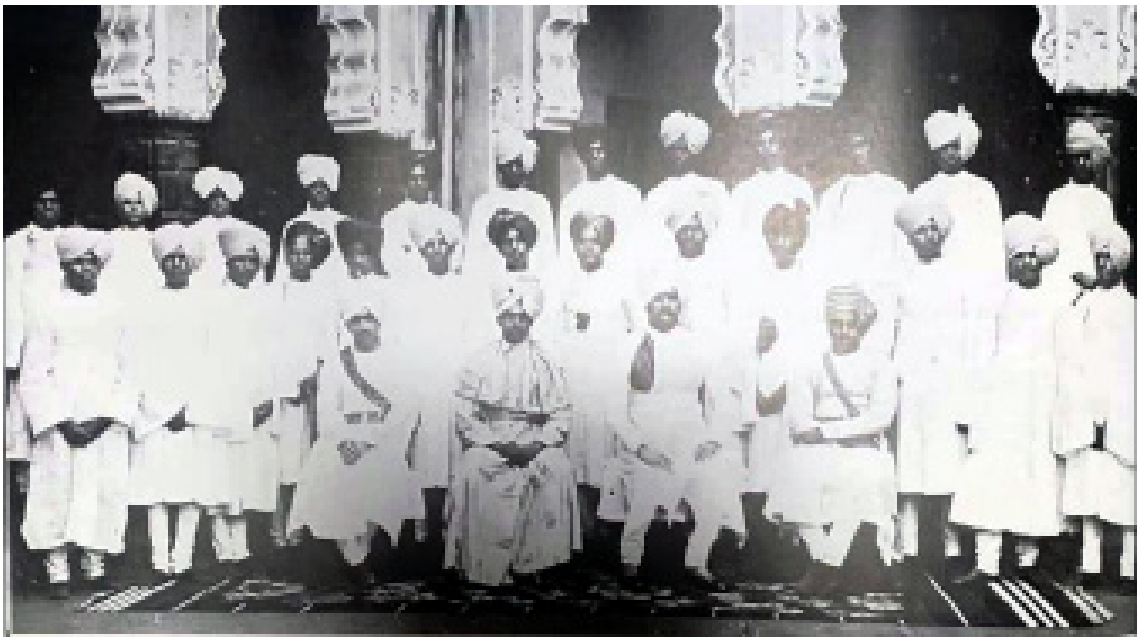

शाहू जी महाराज वैदिक विद्यालय में क्षात्रजगदगुरु, मामा साहिब खानविलकर एवं विद्यार्थीगण

देशभक्त वीर सेनापति
तानाजी मालूसरे

❐हरिकृष्ण

जब शिवाजी को किला जीतने और तानाजी की मृत्यु की खबर दी गई तो वे खुश होने की बजाय दु:खी हुए। उन्होंने इतना ही कहा,'गढ़ (किला) तो आया, लेकिन सिंह चला गया।'

तानाजी मालूसरे शिवाजी की पैदल सेना के सेनापति थे। वे शिवाजी के सबसे पुराने साथियों में थे। तानाजी कोंकण का अपना हरा-भरा गांव छोड़कर शिवाजी के साथ हो गये थे।

तानाजी सिंह की तरह साहसी और वीर थे। वे बड़े से बड़ा मोर्चा संभाल सकते थे और शत्रु की सेना पर सिंह की तरह टूट पड़ते थे। अपनी सेना के सामने वे अपनी वीरता के उदाहरण पेश करके उसका हौंसला बढ़ाते थे। खतरों से खेलने में तानाजी को बहुत मजा आता था। यही कारण था कि शिवाजी तानाजी को एक पल के लिए अपने से अलग नहीं करते थे। वे उनके साहस और बहादुरी की बड़ी इज्जत करते थे। तानाजी भी शिवाजी के साथ छाया की तरह रहते थे। शिवाजी की हर बात मानना और उनके आदेश का पालन करना, ताना जी का परम कर्त्तव्य था।

शिवाजी के अनेक खतरनाक हमलों के समय तानाजी ने उनका साथ दिया था। मुगल सेनापति शाइस्ता खां ने तीन साल से पूना को घेर रखा था। उसकी विशाल सेना के सामने मराठों की सेना का टिक पाना मुश्किल था। शाइस्ता खां से जनता को मुक्त कराने का एक ही उपाय था कि उस पर छापामार तरीके से अचानक हमला किया जाए। शिवाजी ने इस बारे में तानाजी से सलाह की। आखिर एक रात शाइस्ता खां के डेरे पर अचानक हमला करने का फैसला किया गया। यह खतरनाक और साहसी काम था। लेकिन जिस हिम्मत, बहादुरी और चतुराई के साथ शाइस्ता खां पर यह हमला किया गया था, उसकी दूसरी मिसाल मिलना कठिन है। शाइस्ता खाँ वहाँ से घबराकर भाग गया था।

पूना से बारह मील दूर कोंडाना का किला उस समय मुगलों के पास था। किले की देख-रेख एक राजपूत वीर उदयभान कर रहा था। शिवाजी की मां जीजाबाई को यह बात बहुत खटकती थी कि वह किला मराठों के पास नहीं हैं।

एक दिन जीजाबाई ने शिवाजी से कहा,'मैं कोंडाना का किला अपने राज्य से बाहर नहीं देख सकती। मैं उस पर तुम्हारा झंडा लहराता हुआ देखना चाहती हूँ। क्या तुम मेरी इच्छा पूरी नहीं करोगे?'

'अवश्य करूँगा' शिवाजी ने कहा। वे माता जीजाबाई की बात टाल नहीं सकते थे। लेकिन सोच में पड़ गये। कोंडाना का किला जीतना आसान काम न था। एक तो किले की बनावट ऐसी थी कि मुख्य फाटक को छोड़कर अंदर जाना बहुत मुश्किल था। दूसरे, उसका सिपहसालार उदयभान भी कम वीर न था। वह राजपूतों और मुगलों की एक बड़ी सेना लेकर वहाँ रहता था। उस सेना का मुकाबला करना भी बहुत मुश्किल था। आखिर शिवाजी ने बहुत सोच-विचार के बाद तय किया कि यह काम तानाजी मालूसरे को सौंपा जाए। उन्हें विश्वास था कि सिंह जैसे वीर ताना जी ही इस काम को कर सकेंगे।

तानाजी उस समय अपने गांव में बेटे की शादी की तैयारी में लगे थे। शिवाजी का संदेश पाकर वे तुरन्त राजगढ़ पहुँचे। जब शिवाजी ने उनसे कोंडाना का किला जीतने के लिए कहा तो वे बोले,-'ठीक है, पहले कोंडाना की शादी होगी, बाद में मेरे बेटे की।'

तानाजी ने सेना तैयार की। उनके साथ उनका भाई सूर्या जी और मामा शेलार भी चले। मामा शेलार की उम्र तो अस्सी वर्ष थी, किन्तु उनमें बड़े से बड़े सूरमा से टकराने की ताकत थी।

कोंडाना किले की बनावट ऐसी थी कि फाटक की तरफ से हमला करना बेकार था। किले के अंदर कोई डेढ़ हजार सैनिक थे और तानाजी के पास सिर्फ पांच सौ सैनिक। जाहिर था कि सीधे मुकाबले में मराठा सेना का काफी नुकसान होता। इसलिए यह तय किया गया कि रात के अंधेरे में तानाजी और कुछ सिपाही किले की दीवार पर चढ़कर अंदर जाएँ। सूर्याजी बाकी सैनिकों को लेकर फाटक पर

तैयार खड़े रहें।

४ फरवरी १६७० की वह अंधेरी रात। बहादुर सैनिकों की पहरेदारी में घिरा कोंडाना का किला। तानाजी ने किले की दक्षिण-पश्चिम दिशा से चढ़ने की योजना बनायी। वे शिवाजी के स्वामिभक्त घोरपद (गोह) को साथ ले गये थे। उन्होंने उसकी कमर में रस्सी बांधकर किले की दीवार पर फैंका। पर वह आधी दूर जाकर लौट आयी। इसे एक तरह का अपशकुन माना गया। लेकिन तानाजी की नस-नस में वीरता का खून दौड़ रहा था। वह भला कब रुकने वाले थे। उन्होंने घोरपद को दुबारा फैंका। इस बार वह दीवार के ऊपर चिपक गयी। तानाजी और उनके करीब तीन सौ साथी रस्सी के सहारे दीवार पर चढ़कर किले के अंदर पहुंच गये।

इधर किले के पहरेदार सैनिक भी चौकन्ने हो गये। खतरे की सूचना दी गयी और पलभर में शत्रु-सेना तैयार हो गयी। तानाजी ने हमला करने का हुक्म दिया। मराठा सैनिक संख्या में तो कम थे, किन्तु उनका हमला इतना भयानक था कि किले के अंदर के मुगल और राजपूत सैनिक घबरा उठे। उनका हौंसला कमजोर होते देखकर सिपहसालार उदयभान ने अपने बारह बहादुर बेटों को भेजा। लेकिन वे भी न टिक सके और मारे गये। इसी बीच किले का फाटक भी खुल गया था और सूर्याजी अपने सैनिक लेकर आ गये थे। शत्रुओं की सेना दो तरफ से घिर चुकी थी।

आखिर उदयभान अपनी तलवार लेकर आगे बढ़ा। वह सीधे तानाजी से आकर टकराया। ऐसा लगा मानो दो वज्र टकरा गये हों। दोनों में भयानक युद्ध छिड़ गया। अचानक उदयभान के वार से तानाजी की ढाल टूट गयी। तानाजी ने कमर का दुपट्टा खोलकर दाहिने हाथ में लपेट लिया और बाएं हाथ से तलवार चलाने लगे। उनके वार भी इतने भयानक थे कि उदयभान डगमगाने लगा था। आखिर दोनों वीरों ने वीरगति पायी। कोंडाना का किला मराठों के हाथ में आ गया।

जब शिवाजी को किला जीतने और तानाजी की मृत्यु की खबर दी गई तो वे खुश होने की बजाय दु:खी हुए। उन्होंने इतना ही कहा,'गढ़ (किला) तो आया, लेकिन सिंह चला गया।' ताना जी की याद में कोंडाना के किले का नाम 'सिंहगढ़' रखा गया। वह आज भी तानाजी की सिंह जैसी ताकत और बहादुरी की कहानी कहता है।

सितंबर २०२० अंक के लिए शोध आलेख आमंत्रित

'बोहल शोध मंजूषा' ISSN 2395:7115 अंतरराष्ट्रीय बहुभाषी शोध पत्रिका

Impact Fact or :& *3-811*

नोट :- हिन्दी, अग्रेजी, पंजाबी, डोगरी, कन्नड़, तेलगू, बंगाली आदि भाषा व भूगोल, समाज शास्त्र, लॉ, एजुकेशन, हिन्दी, गणित, प्रबन्ध, सँस्कृत आदि विषयों के शोध आलेख स्वीकार्य।

https://t-me/bohalshodh

अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका बोहल शोध मन्जूषा 'सितंबर - २०२०' अंक के लिए आप 15-09-2020 तक आलेख भेज सकते हैं।

❖पत्रिका रेफर्ड जर्नल (Referred journal) एवं प्री रेवियूड के रूप में प्रकाशित हो रही है।

❖मल्टीडीसिप्लिनरी (विभिन्न विषयों पर) मौलिक शोध कृतिदेव फॉन्ट ०१० व कृष्णा फॉन्ट साइज १४ के साथ वर्ड फाइल में टाइप कर भेजें, हाथ का लिखा व फोटोस्टेट स्वीकार्य नहीं।

❖आलेख १५०० से २००० शब्दों का होना चाहिए।

❖'सहयोग राशि' - ११००/- एक हार्ड कॉपी

संपादक-

डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट

सहायक आचार्य एवं शोध निर्देशक हिन्दी

टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर, राजस्थान

मो०- 8708822674

व्हट्सप्प :-9466532152

Email :& grsbohal@gmail.com

website: www.bohalsm.blogspot.com

ब्रह्मज्ञान और उसके अधिकारी

रामफलसिंह, (9418277714)
सी-१८, तृतीय तल, आनन्द विहार, उत्तम नगर नई दिल्ली-५९

संसार में जितने भी प्राणी हैं उनमें मनुष्यों को छोड़कर शेष सभी को ईश्वर ने स्वाभाविक ज्ञान दिया है अर्थात् उनके जीवन के निर्वाहार्थ जितने ज्ञान की आवश्यकता है वह उन्हें किसी अन्य से कुछ विशेष रूप से सीखना नहीं पड़ता। मनुष्य का ज्ञान नैमित्तिक ज्ञान है। वह किसी निमित्त के होने से होता है, अन्यथा नहीं। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को सब कुछ प्रयत्नपूर्वक सीखना पड़ता है। ज्ञान को प्राप्त करके भी उसे निरंतर अपनी बुद्धि का विकास करना पड़ता है, जिससे कि वह दूसरे मनुष्यों के साथ वर्तना सीख सके। स्वाभाविक ज्ञान की सीमा है, नैमित्तिक ज्ञान की कोई सीमा नहीं। मनुष्य के ज्ञान का विकास उसकी आवश्यकताओं के अनुसार होता चला गया और विद्या के विभिन्न क्षेत्र या विभाग बनते चले गए। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान का संचार शिक्षा-तंत्र के माध्यम से होता चला गया और आगे भी होता रहेगा। नए-नए आविष्कार नई-नई व्यवस्थाएं और नए-नए नियम और कानून भी इसी क्रम में कड़ी बन कर जुड़ते रहे, लेकिन यह सब ज्ञान और यह विद्या आई कहां से? इन सब का मूल कहां है?

आर्यसमाज का प्रथम नियम ही इस बात की घोषणा कर रहा है- 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।' यदि यह मूल न हो तो कोई एक पग भी आगे न बढ़ा सके। जीवन निर्वाह के लिए विद्या या ज्ञान अति आवश्यक है। यदि वह न सीखा जाए तो बड़ी कठिनाई आ सकती है। इसी प्रकार जीवन के मुख्य उद्देश्य अर्थात् धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से मोक्ष तक की यात्रा को पूरा करने के लिए इन भौतिक विद्याओं के साथ-साथ ब्रह्म-विद्या (Spritual knowledge) की भी नितांत आवश्यकता है।

वास्तव में देखा जाए तो अन्य विद्या सीखने का अंतिम उद्देश्य यही है कि हम सुख प्राप्त कर सकें। महर्षि दयानंद जी महाराज ने अपने वेद भाष्य में स्थान-स्थान पर इस बात का उल्लेख किया है कि सब विद्याएँ किसलिए जानें? राज्यव्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था, सैन्य-व्यवस्था आदि सब किसलिए उत्तम होनी चाहिएँ? इसलिए, कि सब लोग सुखपूर्वक एवं सफलतापूर्वक अपने जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष की ओर बढ़ते रहें। जीवन में प्रत्येक विद्या का अंतिम ध्येय वे मुक्ति को प्राप्त करना ही मानते हैं। जब यह लक्ष्य इतना महत्त्वपूर्ण है तो निश्चित बात है कि उसे प्राप्त करने का प्रयत्न प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। लेकिन यह भी सत्य है कि सांसारिक पदार्थों के भोग में आसक्त लोगों की प्रवृत्ति ईश्वर प्राप्ति की ओर नहीं है। वे इस विद्या को जानना नहीं चाहते। इसका कारण भौतिकता में आसक्ति तो है ही, साथ-साथ यह भी है कि यहां उन्हें प्रत्यक्ष उपलब्धि और लाभ दिखाई देते हैं; जबकि ब्रह्मविद्या में ऐसा नहीं है। यद्यपि उसके लाभ भूत विद्या से कहीं अधिक बढ़कर हैं, तथापि यह सरलता से समझ में नहीं आता है। संभवतः सामान्य पुरुषों की वृत्ति सांसारिक सुखों की ओर देखकर ही छान्दोग्य उपनिषद् (तृतीय प्रपाठक ११/६) में कहा है- नान्यस्मै कस्मैचन। यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततोभूय इत्येतदेव ततो भूय इति।

अन्य किसी व्यक्ति को भले ही वह समुद्र से घिरी हुई इस पृथ्वी को धन से भरकर दे दे, इस रहस्य को मत दे। यह रहस्य उससे भी बढ़कर मूल्यवान है- बढ़कर मूल्यवान है। प्रश्न होता है कि किस रहस्य को प्रकट न करे, न दे? इसका उत्तर इसके पहले वाले प्रकरण में दिया गया है।

अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एक मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः।।१।।

वसु (अभिमुख) रुद्र (इन्द्रमुख) आदित्य (वरुणमुख) मरुत् (सोम मुख) साध्य (ब्रह्ममुख) इन पांचों में जो ऊपर उठ जाता है, वह उस लोक में पहुंच जाता है जहां न उदय होता है, न अस्त होता है। जैसे सूर्य अकेला आकाश के मध्य में स्थित है वैसे वह व्यक्ति वसु आदि के बीच में अकेला=अप्रतिम दिखाई देता है।

न वै तत्र न निम्लोचनोदियाय कदाचन। देवास्तेनाहं सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति।।२।।

न वहां कभी अस्त होता है, न उदय। वह सत्य ब्रह्म की अवस्था है। हे देवो! मुझे उस सत्य ब्रह्म से कभी दूर न करो।

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै भवति ये एमामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद।।३।।

जो उपनिषद् के इस सत्य-ब्रह्म को जान जाता है, उसके लिए उदय-अस्त नहीं होता। उसके लिए तो एकदम प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है। उसे आगे चलकर कहा कि यह रहस्य ब्रह्मा ने प्रजापति को बतलाया; प्रजापति ने मनु को और मनु ने जन साधारण को। इसी रहस्य को अरुण ने अपने जेष्ठ पुत्र उद्दालक आरुणि को बतलाया।

आगे चलकर पुनः कहा-

इदं वा व तज्ज्येष्ठाय पुत्राय जिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्राणाय्याय वा अन्तेवासिने।।५।।

अर्थात् प्रत्येक पिता को चाहिए कि इस रहस्य को अपने ज्येष्ठ पुत्र को बतलाए अथवा अपने प्रणयशील, विनीत अंतेवासी को- शिष्य को इस का उपदेश करे।

तब जाकर छठे मंत्र में यह बात कही गई है कि जिसका वर्णन हमने पहले किया है। कितनी सुंदर बात कही गई है कि पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र को ब्रह्म-विद्या का उपदेश करे। यह बात उपनिषत्कार ने अपने स्तर पर ही कह दी हो, ऐसा नहीं है। अपितु स्वयं वेदमाता इसका उपदेश करती है। ऋग्वेद ८/३/२४ में कहा गया है कि जिस कर्मयोगी ने अपने पिता से ब्रह्म-विद्या तथा कर्मयोग का अध्ययन किया है, वह ब्रह्म-वेत्ताओं में श्रेष्ठ होता है। महर्षि मनु ने भी ३/३ में लिखा है कि तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्म दायहरम् पितुः।। अर्थात् जो ब्रह्म-विद्या के चमत्कार से प्रसिद्ध और जिसने अपने पिता से ही वेदरूप पैतृक संपत्ति को जान लिया है, उस स्नातक का गोदान से सत्कार करे।

ब्रह्म-विद्या अत्यंत सूक्ष्म और महत्वपूर्ण विद्या है। इसका उपदेश केवल अधिकारी को ही करने के लिए उपनिषद् में इसलिए कहा कि जो पात्र नहीं है उसको उपदेश देकर व्यर्थ ही करना है। इतने श्रम से उपदेश किया, इतनी महत्वपूर्ण बात बतलाई गई और सुनने वाले ने उसे यूं ही हंसी में उड़ा दिया तो उस उपदेश का लाभ कुछ भी न हुआ। लोक व्यवहार की दृष्टि से भी यदि देखा जाए तो सामान्य ज्ञान तो सब को अनिवार्य रूप से दिया ही जाता है। विद्यालय में कुशाग्र बुद्धि और मंदबुद्धि सभी पढ़ते ही हैं, लेकिन विशेष ज्ञान के लिए तो विशेष योग्यता की आवश्यकता होती है। क्या आईआईटी में प्रत्येक विद्यार्थी को प्रवेश मिल जाता है? एमबीबीएस, आईएएस के लिए प्रत्येक का चयन हो जाता है? जी नहीं। इसके लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। वहां केवल पात्र को ही प्रवेश दिया जाता है। अपात्र को दिया गया दान तो देने वाले और लेने वाले दोनों का ही नाश करने वाला होता है। जब लोक व्यवहार में भी सभी प्रकार का ज्ञान सबको नहीं दिया जाता तो फिर ब्रह्म-विद्या जैसा सूक्ष्म और गहन ज्ञान अपात्र को देने के लिए कैसे कहा जा सकता था? इसके लिए तो बहुत उच्च कोटि की योग्यता एवं जिज्ञासा दोनों की आवश्यकता रहती है।

योग्यता हो और जिज्ञासा न हो तो भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। दोनों का होना आवश्यक है। योगदर्शनकार कहते हैं- तीव्र संवेगानामासन्न।। योग १/२१। जिज्ञासा जितनी उत्कट होगी, लाभ उतना ही शीघ्रता से होगा। ज्ञान-पिपासा इतनी तीव्र होनी चाहिए कि उसके आगे सारी विघ्न-बाधाएं भी तुच्छ जान पड़ें। महर्षि दयानंद जी जिस समय गुरु की शरण में जाने के लिए प्रयास कर रहे थे, उस समय वे अपना शारीरिक सुख त्याग कर बस एक ही धुन लिए भ्रमण कर रहे थे कि किसी प्रकार कोई योग्य आचार्य मिल सके। विद्या प्राप्ति के समय उन्हें गुरु की कठोरता भी फूलों के समान कोमल ही जान पड़ती थी।

उपनिषदों में कई स्थानों पर ऐसा वर्णन आता है। जब कोई जिज्ञासु ब्रह्मवेत्ता गुरु के पास कुछ सीखने के लिए जाता है तो गुरु आदेश देते हैं कि जाओ, पहले इतने समय तक तपस्या युक्त जीवन में रहो, फिर आना। प्रश्नोपनिषद् का तो प्रारंभ ही इस प्रकार होता है कि जब ६ ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु हाथ में समिधाएं लेकर महर्षि पिप्पलाद के पास जाते हैं। वे उन्हें कहते हैं- तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा, ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्सय यथाकामं प्रश्नान् पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वदयाम इति।

पिप्पलाद ऋषि ने कहा तुम लोग तपस्वी तो हो, परंतु एक साल तक ब्रह्मचर्य और श्रद्धापूर्वक मेरे समीप निवास करो। उसके पश्चात् इच्छानुसार प्रश्न करना। यदि हम उन प्रश्नों के उत्तर जानते होंगे तो सब कुछ बता देंगे।

महर्षि ने ऐसा क्यों कहा? जबकि वे जानते थे कि वे लोग तपस्वी थे। इसलिए, कि इस समय में वे उनकी पात्रता जान लेंगे, और यदि वे भागने वाले हुए तो इतना सुनकर स्वयं ही भाग जाएंगे। साथ ही साथ यह शर्त भी लगा दी कि यदि मुझे उन प्रश्नों का उत्तर पता होगा तो बता सकूंगा, अन्यथा नहीं। यह उनकी सत्यता एवं स्पष्टवादिता को प्रकट करता है। यदि यही बात आज के युग में किसी को कह दी जाए तो वह कहेगा- भाई, इतना समय किसके पास है, अपने घर चलो या किसी अन्य के पास चलो। एक साल तक यहां जंगल में रहकर अनेकों कष्ट भी उठाएं और उस पर भी अंत में पता चले कि यह तो हमारे प्रश्नों के उत्तर ही नहीं जानते; ऐसे गुरु के पास रहकर भला क्या लाभ है? परंतु ज्ञान प्राप्ति की उनकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि

उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस बात को स्वीकार कर लिया। बस आचार्यप्रवर को भी यही जांच करनी थी।

स्वार्थी व्यक्ति तो पदे पदे येन केन प्रकारेण अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ही प्रयत्नशील रहता है और स्वार्थ सिद्ध होने पर किसी को पहचानता भी नहीं। जो दुर्योधन संधि का प्रस्ताव लेकर गए श्रीकृष्ण जी को बंदी बनाने पर उतारू हो गया था, युद्ध का अवसर आने पर उन्हीं से सहायता मांगने के लिए पहुंच जाता है! यह अवसरवादिता नहीं तो और क्या है!

वास्तव में देखा जाए तो ईश्वर स्वयं ही सच्चे आराधक, उपासक पात्र को चुन लेता है और उसी के ऊपर आशीर्वादों की वर्षा होती है। बड़े-बड़े विद्वान् और आकर्षक वक्तव्य देने वाले ब्रह्म को जानने वाले भी हों, यह आवश्यक नहीं है। कठोपनिषद् के ऋषि (२/२३) कहते हैं-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

अर्थात् आत्मा बड़े-बड़े भाषणों से नहीं मिलता, तर्क- वितर्क से नहीं मिलता। बहुत कुछ पढ़ने सुनने से भी नहीं मिलता। जिसे यह वर लेता है, वही इसे प्राप्त कर सकता है। उसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को खोल कर रख देता है, अर्थात् सबसे अधिक महत्वपूर्ण है- पात्रता। उसके बिना कुछ प्रगति नहीं हो सकती। इसी बात को ध्यान में रखकर ऋषि ने कहा कि सबको इस विद्या का उपदेश नहीं करना चाहिए।

यहां एक शंका आपके मन में उठ रही होगी कि जब उपदेश ही नहीं करेंगे तो लोगों को उसके लाभ कैसे विदित होंगे, उनकी उन्नति कैसे होगी! इस प्रश्न का उत्तर वैसे तो उक्त वर्णन में आ ही चुका है, पुनः और भी स्पष्टीकरण कर देते हैं। जब कोई उपदेश सुनना ही नहीं चाहता और सुनकर भी उस पर आचरण नहीं करता और आचरण करके भी कुछ विशेष नहीं जानना चाहता तो उसे कैसे यह विद्या दी जा सकती है! हां, सामान्य रूप से वेद का पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनाना परम आवश्यक कार्य है। वह सब को करना ही चाहिए। परंतु विशेष जानने के लिए तो विशेष पात्रता अनिवार्य है।

तनिक विचारिये तो सही कि वे संतानें कितनी सौभाग्यशाली होंगी कि जिनके पिता ही उनको ब्रह्मविद्या का उपदेश करते हैं। एक बार दृष्टि उठाकर यह देखने का प्रयास तो कीजिए कि आज के युग में कौन पिता है जो अपने पुत्र को इस विद्या का उपदेश कर रहा हो! सभी अपनी संतानों को डॉक्टर, इंजीनियर, अधिकारी बनाने के लिए घोर से घोर परिश्रम करते हुए ही दिखाई देंगे। कोई चाहता है कि उनका पुत्र वैराग्यवान् होकर तपस्वी जीवन व्यतीत करे? जब वेद और ऋषियों की आज्ञा का पालन हो ही नहीं रहा है तो फिर अगला प्रश्न तो स्वतः ही निरस्त हो जाता है।

प्रथम तो आत्मा-परमात्मा को जानने वाला प्रश्न ही बड़ा विकट है। साधारण मनुष्य तो रोटी, कपड़ा और मकान तक रह जाता है। जिनको यह प्राप्त हो जाते हैं, वे भी कुछ और भोग सामग्री जुटाने में समय व्यतीत करते हैं। यदि लोग ईश्वर को कुछ थोड़ा बहुत मानते भी हैं तो वे केवल इसलिए कि उनके स्वार्थों की पूर्ति होती रहे और वे दुःखों से बचे रहें। लोग पाप से नहीं पाप के फल=दुःख से बचना चाहते हैं। ईश्वर की पूजा भी उससे प्रेम के कारण नहीं, अपितु इसी भावना से कर रहे हैं कि उन्हें पापकर्म का फल न भुगतना पड़े।

महात्मा आनंद स्वामी जी एक स्थान पर कथा कर रहे थे। रात्रि में उनका व्याख्यान ईश्वर विषय पर था। प्रातः काल अगले दिन एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला- स्वामीजी, आप रात को ईश्वर भक्ति की बात कर रहे थे। जल्दी से मुझे ईश्वर के दर्शन करवा दो, उसके बाद मुझे ड्यूटी पर अपने कार्यालय में जाना है। स्वामीजी ने कहा कि- भाई, यह तो संभव नहीं है कि मैं इतनी जल्दी तुम्हें उसके दर्शन करवा दूँ। वह बोला- क्यों? आज तो विज्ञान का युग है। सब काम बहुत जल्दी-जल्दी हो जाते हैं, तो फिर ईश्वर-दर्शन क्यों नहीं हो सकते? देखो, मैंने बिजली का यह बटन दबाया और झट से प्रकाश हो गया, बल्ब जल गया। स्वामीजी ने कहा- प्रथम तो तुमने यह ध्यान ही नहीं दिया कि बल्ब का संबंध बिजली के तार से है। इस तार का संबंध खंबे पर लगे तार से है और उसका पावर हाउस से। दूसरे यह सारा खेल खड़ा करने में कितने लोगों का कितने वर्षों का परिश्रम है, वह भी तुमने नहीं देखा। तुमने केवल बटन दबाना सीखा है। बटन दबाने के लिए, प्रकाश होने के लिए क्या-क्या करना पड़ा- यह नहीं देखा।

क्या ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मविद्या का पात्र माना जा सकता है? बस, उपनिषद् के ऋषि का यही अभिप्राय है। दीर्घकाल तक निरंतर अभ्यास से यह पात्रता उपलब्ध की जा सकती है। धीरे-धीरे अभ्यास से श्रद्धा जगने लगेगी और श्रद्धा जगने से प्रेम बढ़ने लगेगा। प्रेम के बढ़ते ही स्वार्थ पीछे छूट जाएंगे और स्वार्थ के छूटने से हमारी दृष्टि विशाल होने लगेगी-- और ऐसा होते ही सब कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगेगा। मोह एवं शोक मिटने लगेंगे- तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमश्नुतः। (ईशोपनिषद् ७)

यह बल्ब जलाने हेतु तारों का संबंध और उनका

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

ईशोपनिषद्

व्याख्याकार : महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज
प्रस्तुति : आर्य मिलन 'अवत्सार' जयपुर
ईमेल : arya.avatsara@gmail.com

धारावाह प्रकाशन-३

ब्रह्म को हम किस प्रकार अपने हृदय में धारण करें अथवा यों कहिये कि हम किस प्रकार अपने आत्मा को उन्नत करें, इस के लिए उपासक को इन गुणों (गतांक देखिये) का मानसिक जप करना होगा। केवल मुँह से किसी शब्द का रटना जप नहीं है, किन्तु हृदय से उस शब्द के अर्थ का चिन्तन, जप का उत्तरार्ध और जप का मुख्य और आवश्यक अंग है। (तज्जपस्तदर्थभावनम्।।-योगदर्शन) आत्मा की उन्नति या ब्रह्म की प्राप्ति के उद्योग का आरम्भ इसी जप से होता है। इस जप से उपासक का आत्मा ईश्वरीय गुणों से भासित होता है और उसमें गुण-वृद्धि हुआ करती है। इसी को उपासना का पहला अंग भी कहते हैं।

उपासना का दूसरा और अन्तिम अंग ब्रह्म को हृदय में धारण कर लेना है। पहले अंग में जहाँ वाचक (शब्द) को समझते हुए हृदय में रखा जाता है, दूसरे अंग में हृदय को वाच्य (अर्थ) का मन्दिर बनाना पड़ता है, अर्थात् वाच्यों को हृदय (आत्मा) में रखा जाता है। ब्रह्मविद्या के पहले अंग की प्राप्ति के उद्योग का सूत्रपात सन्ध्या से किया जाता है और दूसरे अंग की पूर्ति अष्टांगयोग के अन्तिम अंगों से होती है, सन्ध्या को भी सन्ध्यायोग इसीलिए कहते हैं। सन्ध्या के उपासकों को भी निम्नलिखित योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिए-

1- शारीरिक उन्नति अर्थात् समस्त इन्द्रियाँ बलवान्, पवित्र और यशवाली होनी चाहिएँ।

2- मानसिक उन्नति अर्थात् हृदय द्वेष से रहित होना चाहिए और प्राणायामादि के द्वारा उसमें प्रत्याहार की प्राप्ति की योग्यता उत्पन्न हो जानी चाहिए।

3- आत्मिक उन्नति, इसके लिए उपासना के प्रथम अंग, वाचक (शब्द) को हृदय में धारण करने का अभ्यास करना चाहिए।

इतना कार्य सन्ध्या से हुआ करता है और इसी के लिए सन्ध्या की जाती है और करनी चाहिए। वाचक (शब्द) के हृदय में धारण करने का फल यह होता है कि मनुष्य का हृदय ईश्वरीय गुणों के आलोक से आलोकित हो उठता है और विश्व प्रेम का आभास होने लगता है।

जप अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। इस से स्मृति का भी विकास होता है। योग के इस सिद्धान्त को पश्चिम के विद्वान् भी स्वीकार करते हैं। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध राजनैतिक ग्लैडस्टोन के लिए कहा जाता है कि उसने सम्पूर्ण होमरकृत इलयट को रट रखा था। जहाँ से कोई चाहे वह सुना सकता था। इसी से उसकी स्मृति बहुत उच्च कोटि की थी। परन्तु जप का अर्थ केवल Cat (बिल्ली) और Dog (कुत्ता) के अर्थ का रटना नहीं है। वह जप, जिसका ऊपर विधान किया गया है, चित्त के उन्नत करने का साधन और मुख्य साधन है।

ब्रह्म को किस प्रकार उपासक (योगी) हृदय में धारण कर सकता है? यह बात है जो ब्रह्म-विद्या का अन्तिम पाठ है और यह पाठ उपनिषद् ने इस प्रकार दिया है कि -

'जिस अवस्था में समस्त चराचर जगत् को योगी परमेश्वर हुआ ही जानने लगता है, तब ऐसे एकत्व को देखने वाला (योगी) मोह और शोक से छूट जाता है।'

उपनिषद्-वाक्य एक अवस्था-विशेष का संकेत करता है। वह अवस्था कौन-सी है? यही प्रश्न है, जिस पर विचार करना है। योग के अंगों में प्राणायाम के पश्चात् पाँचवें अंग से शरीर के भीतर इष्ट परिवर्तनों के करने का विधान है, मनुष्य की शक्ति अन्तः और बाह्य करणों में साधारणतया फैली हुई रहती है और इसलिए योगी के सिवाय कोई मनुष्य अपनी पूर्ण शक्ति को किसी काम में नहीं लगा सकता। जब योगी अपनी समस्त शक्तियों को भीतर एकत्रित करना चाहता है तब यह उद्देश्य प्रत्याहार के अभ्यासों द्वारा पूरा किया जाता है। प्रत्याहार समस्त शक्ति को केन्द्रित करने की कार्यप्रणाली ही का नाम है। उस समस्त (प्रत्याहार द्वारा) एकत्रित शक्ति को किसी एक लक्ष्य पर लगा देने का नाम धारणा है और उसी एकत्रित शक्ति को किसी एक स्थान पर न लगाकर आत्मा में लगा देने का नाम ध्यान

है, और इसी की उच्चावस्था को समाधि कहते हैं। इस प्रकार समस्त शक्ति को आत्मा में लगा देने को ध्यान कहा गया है, परन्तु योगी आत्मा में शक्तियों को लगाने का कोई साक्षात् यत्न नहीं कर सकता। हां, इस कार्य की पूर्ति असाक्षात् यत्नों से हुआ करती है, अर्थात् कोई भी अपनी शक्तियों को साक्षात् यत्नों से आत्मा के अन्दर लगा नहीं सकता, परन्तु विशेष अवस्था के उत्पन्न कर लेने से वह शक्ति स्वयमेव आत्मा में लग जाया करती है। उसी असाक्षात् यत्न का नाम ध्यान है।

ध्यान के समझने में आमतौर से गलती की जाया करती है। निराकार ईश्वर के ध्यान की बात आते ही लोग कहने लगते हैं कि जिस की कोई शक्ल नहीं, सूरत नहीं, रूप नहीं, भला किस प्रकार कोई उसका ध्यान कर सकता है? ऐसे पुरुषों के मतानुसार ध्यान किसी बाह्य रूप-रंग वाली वस्तु को भीतर हृदय में लाने का नाम है, परन्तु बात सर्वथा इसके विपरीत है। ध्यान बाहर से किसी वस्तु को भीतर लाने को नहीं कहते, किन्तु भीतर (हृदय में) जो कुछ भी हो उस सब को निकालकर बाहर फेंक देने का नाम ध्यान है, इसलिए सांख्य के आचार्य कपिल ने कहा है-

'ध्यानं निर्विषयं मनः।'

अर्थात् सांख्य की परिभाषानुसार ध्यान मन को निर्विषय करने को कहते हैं। मन को निर्विषय करने का अर्थ यह है कि मन का इन्द्रियों से काम लेना, जिससे जाग्रतावस्था बना करती है, छूट जाय तथा मन का अपने, भीतर काम करना भी जिससे स्वप्नावस्था निर्मित होती है, बन्द हो जाये।

इसका तात्पर्य यह है कि जाग्रतावस्था ही में योगी अपनी वह अवस्था बना ले जो सुषुप्ति में हुआ करती है और जिसमें मन पूर्ण रीति से निष्क्रिय (निर्विषय) हुआ करता है। आत्मा की दो प्रकार की शक्तियां हैं- एक वह जो सूक्ष्म और स्थूल शरीर द्वारा, जगत् में काम करती है और जिसे आत्मा की 'बहिर्मुखी वृत्ति' कहते हैं। दूसरी वह जो आत्मा के अन्दर काम करती है और जिसका नाम 'अन्तर्मुखी वृत्ति' है। दोनों वृत्तियों में से एक वृत्ति प्रत्येक समय काम किया करती है, न दोनों वृत्तियाँ एक साथ काम करती हैं और न दोनों एक साथ बन्द हो जाती हैं। यदि एक वृत्ति बन्द कर दी जाये तो दूसरी स्वयमेव काम करने लगती है।

बहिर्मुखी वृत्ति के बन्द करने का नाम ही मन को निर्विषय करना है। मन के निर्विषय करने के साधन ध्यान के अभ्यास हैं। इस प्रकार मन के निर्विषय हो जाने मात्र से आत्मा की अन्तर्मुखी वृत्ति स्वयमेव जारी हो जाती है। जिस प्रकार नहर का फाटक बन्द कर देने से समस्त जल-स्वयमेव नदी की धारा में प्रवाहित होने लगता है और इस अन्तिम कार्य के लिए किसी प्रकार का यत्न अपेक्षित नहीं होता, इसी प्रकार नहर रूपी बाह्यवृत्ति बन्द होने से आत्मारूपी नदी में अन्तर्मुखी वृत्तिरूप जल स्वयमेव प्रवाहित हो जाता है।

यही वह अवस्था है जिसका उपर्युक्त मन्त्र में उल्लेख है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने ही से योगी एकत्वदर्शी हो जाता है। ध्यान की अवस्था में ध्यानावस्थित योगी समझता है कि वह ध्याता है और किसी ध्येय की प्राप्ति के लिए ध्यान रूपी क्रियाएँ करता है। परन्तु जब ऊँची समाधि अवस्था में पहुँचता है तब ध्याता और ध्यान दोनों का ज्ञान तिरोहित हो जाता है और केवल ध्येय (ईश्वर) ही उसके समस्त ज्ञान का लक्ष्य रह जाता है और उस समय योगी की वही अवस्था होती है जिसके लिए मुण्डकोपनिषद् में (2/2/11) कहा गया है-

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।।

अर्थात् (इदम्, अमृतम्) यह अमृत रूप (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही है। (पुरस्ताद् ब्रह्म) आगे ब्रह्म है (पश्चात् ब्रह्म) पीछे ब्रह्म है। (दक्षिणतः) दाहिने (च) और (उत्तरेण) बाएँ (अधः) नीचे (च) और (ऊर्ध्वम्) ऊपर भी (प्रसृतम्) फैला हुआ ब्रह्म ही है (इदम् विश्वम्) वह सब विश्व (इदम् वरिष्ठम्) यह अत्यन्त श्रेष्ठ (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही है। भाव इसका यह है कि उस ज्ञानी को सब ओर ब्रह्म ही दिखाई देता है। इसी अवस्था के लिए एक कवि ने कहा है-

जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

उपनिषद् के इसी भाव को कुछेक अन्य कवियों ने सुन्दरता से अपनी कविताओं में समाविष्ट किया है-

दिया अपनी खुदी[1] को जो हमने मिटा।
वह जो परदा सा बीच में था, न रहा।।
रही परदे में अब न वो परदे-नशीं।
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।।1।।
जलवे से तिरे भर गईं, इस तरह से आँखें।
हो कोई भी, आता है फकत तू ही नजर में।।2।।
आप ही आप हैं यहाँ, गैर का कुछ काम नहीं।
जातेमुत्लक[2] में तिरे शक्ल नहीं नाम नहीं।।3।।
याद में उनकी ऐसे महव[3] हुए।
अपनी सुध बुध रही न कुछ बाकी।।4।।
बेखुदी[4] छा जाय ऐसी दिल से मिट जाय खुदी।
उनके मिलने का तरीका, अपने खो जाने में है।।5।।
जब मैं था तब हर नहीं, जब हर तब मैं नाय।
प्रेम-गली अति सांकरी ता में दो न समाय।।6।।

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

स्वास्थ्य और व्यायाम

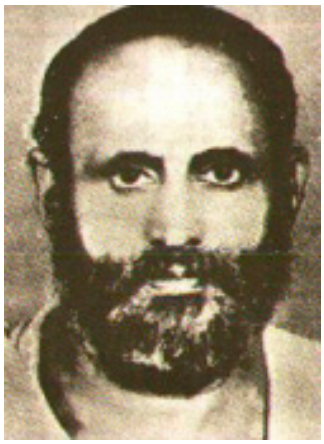

❒पूज्य स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती (गुरुकुल झज्जर)

स्वर्ग और नरक कहीं अन्यत्र नहीं है। स्वस्थ मनुष्य के लिए यह संसार ही स्वर्ग समान है। रोगी मनुष्य चाहे कितना ही धनी मानी हो, वह सर्वथा पराधीन होने से अत्यंत दीन और दु:खी रहता है। वह एक दरिद्र भिखारी से भी गया बीता है क्योंकि उसे अपनी भूलों के कारण घोर नरक (दु:ख) भोगना पड़ता है। बात तो यथार्थ में यही है। चाहे मनुष्य दरिद्र ही क्यों न हो, यदि वह पूर्ण स्वस्थ है, तो वह धन के अभाव में भी धनवान है क्योंकि स्वास्थ्य धन से बढ़कर कोई धन नहीं है। स्वस्थ मनुष्य ही स्वर्ग (सब सुखों) का उपभोग करता है। इसलिए हमारे पुरुषा ऋषि महर्षियों ने सांसारिक सुख (अभ्युदय) और पारलौकिक सुख नि:श्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति का साधन आरोग्य व स्वास्थ्य को ही माना है। इसलिए स्वास्थ्य ही हमारा सर्वस्व है और इसकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। स्वास्थ्य की रक्षा बिना व्यायाम के असंभव है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

परमपिता परमात्मा ने हमें रोगी और दु:खी होने के लिए नहीं बनाया, हम तो दु:खों और रोगों को स्वयं बुलाते हैं और पुन: रोते और पछताते हैं। हमने स्वास्थ्य के मूलाधार व्यायाम को जब से छोड़ा, तभी से हमारी वह भयंकर दुर्गति हुई है, जिसको लिखते हुए भी लज्जा आती है। आज क्या बालक, क्या युवा सभी रोगी हैं; क्योंकि हम ऋषियों की प्यारी शिक्षा- ब्रह्मचर्य और इसके मुख्य साधन- व्यायाम को छोड़ बैठे और इनके स्थान पर विषयी, भोगविलास प्रिय और कामवासना के क्रीतकिंकर बन चुके हैं। आज के युवक और युवतियां व्यायाम से प्रेम नहीं करते। इन्हें अखाड़े और व्यायामशाला में जाना रुचिकर नहीं। इन्हें तो सिनेमा, थिएटर और नाचघर प्यारे हैं। नगरों में सिनेमाघरों के आगे भारी भीड़ लगी रहती है और अखाड़े खाली पड़े रहते हैं। क्या हुआ एकाध सौभाग्यशाली व्यक्ति उधर मुख करता है। इतने पर भी स्वास्थ्य और बल की आशा करते हैं! हमारे युवक अखाड़ों में जाकर करें भी क्या? क्योंकि इन्हें तो दंड बैठक और कुश्ती से इसलिए घृणा है कि कहीं इनके कोमल शरीर को अखाड़े की धूल व मिट्टी न लग जाए और इनके सुन्दर वस्त्र और शरीर ही न बिगड़ जायें। ऐसे ही व्यायाम ही व्यायामभीरू नपुंसकों (हिजड़ों) से यह देश भरा पड़ा है। भोले युवकों को इतना भी ज्ञान नहीं कि यदि एक मशीन को वर्ष भर न चलाया जाए तो उसकी दशा कितनी बिगड़ जाती है! उसे पुन: चालू करने के लिए नई मशीन के मूल्य से भी कहीं अधिक धन व्यय करना पड़ता है। इसी प्रकार हमारा शरीर भी व्यायाम व कार्य न करने से सर्वथा निर्बल, विकृत और रोगों का घर बन जाता है। पुन: यत्न करने पर भी ठीक होने को नहीं आता।

सब जानते हैं कि तालाब का पानी स्थिर होने से ही सड़ता है और नदी झरनों का जल चलने के कारण ही निर्मल और कांच के सदृश चमकता है। इसी प्रकार व्यायाम न करने से भी रक्त का संचार भली-भांति नहीं होता, इसलिए अनेक प्रकार के मल शरीर में रुकने वा एकत्र होने से रक्त मलिन और गंदा होकर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। व्यायाम से रक्त का संचार और शुद्धि होती है। सब अंगों में बल, स्फूर्ति और शक्ति आती है। व्यायाम लचक, वृद्धि, सौंदर्य, कांति और बल को उत्पन्न करता है, सब अंग प्रत्यंगों को पूर्ण और पुष्ट करता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिए सबसे बढ़कर पुष्टि दायक और स्वास्थ्यप्रद है। उचित व्यायाम से प्राय: सभी रोग रुक जाते हैं। आज तक संसार में कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ जिसने बिना व्यायाम के परमारोग्य और स्वास्थ्य की प्राप्ति की हो। व्यायाम का अभाव वा आलस्य ही रोगों का स्रोत है। पूर्ण सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन व्यायाम ही है।

व्यायाम से लाभ

जैसा कि मैं पहले ही लिख आया हूं कि स्वास्थ्य प्राप्ति का मुख्य साधन व्यायाम ही है। अब मैं इसकी पुष्टि में ऋषियों, महर्षियों एवं अन्य अनुभवी व्यायामाचार्यों का मत देता हूं। परम वैद्य महर्षि धन्वंतरि का मत

शरीरोपचय: कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा।।१।।
श्रमक्लमपीपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।

आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते।।२।।

(सुश्रुत संहिता, चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३९-४०)

अर्थ : व्यायाम से शरीर बढ़ता है और शरीर की कांति व सुंदरता बढ़ती है। शरीर के सभी अंग सुडौल होते हैं। पाचन शक्ति बढ़ती है, आलस्य दूर भागता है। शरीर दृढ़ और हल्का होकर स्फूर्ति आती है तथा तीनों दोषों की मृजा (शुद्धि) होती है।

श्रम (थकावट) क्लम (दु:ख) प्यास, शीत (जाड़ा) उष्णता (गर्मी) आदि सहने की शक्ति व्यायाम से ही आती है और परम आरोग्य अर्थात् आदर्श स्वास्थ्य की प्राप्ति भी व्यायाम से ही होती है। महर्षि पतंजलि जी चरक संहिता में इसी विषय में लिखते हैं-

लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेशसहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते।।

(चरक संहिता सूत्र० ७/३१)

व्यायाम से शरीर में लघुता, (स्फूर्ति, हल्कापन, फुर्तीलापन), कार्य करने की शक्ति, स्थिरता, क्लेश तथा दु:खों का सहना, दोषों (कुपित वात, पित्त, कफ) का नाश और जठराग्नि की वृद्धि होती है।

हमारे प्रात: स्मरणीय ऋषियों ने इन श्लोकों में व्यायाम करने के लाभों का इतनी भली भाँति वर्णन किया है कि मानो गागर में सागर भर दिया है। जो भोजन हम प्रतिदिन करते हैं, वह प्रथम हमारे पक्वाशय पेट में जाता है और वहां पेट की अग्नि, जिसे जठराग्नि कहते हैं, खाए हुए भोजन को पकाती है। भोजन पचने पर आमाशय से ही शेष अंगों को पहुंचता है तथा सारे शरीर को शक्ति और आरोग्य प्रदान करता है। जिसकी जठराग्नि ठीक कार्य करती है उसका खाया हुआ पौष्टिक भोजन व्यर्थ नहीं जाता और उसका पचकर रस बन जाता है। पौष्टिक सारभाग को तीव्र जठराग्नि मल भाग में नहीं जाने देती। जिसकी पाचन शक्ति वा जठराग्नि अच्छी तथा तीव्र होती है, उसका भोजन अधिक मात्रा में शीघ्र पचकर रस आदि धातुएँ बनती रहती हैं और ये रस, रक्त, वीर्य आदि सात धातुएं शरीर को हष्ट पुष्ट बनाती और धारण करती हैं, इसीलिए इनको धातु कहते हैं और धातु ही से शरीर का निर्माण, वृद्धि वा उपचय होता है और इनकी घटती वा ह्रास से ही शरीर का नाश होता है। इसलिए महर्षि धनवंतरि जी महाराज ने 'आषोडशाद् वृद्धि:' सोलह वर्ष से २५ वर्ष की आयु तक वृद्धि अवस्था मानी है। इस आयु में वीर्यादि सभी धातुओं की वृद्धि होती है। वृद्धि अवस्था में कई कारणों से जठराग्नि बड़ी तीव्र होती है। जो कुछ भी खाया पिया जाता है वह शीघ्र पच, रसादि धातु बनकर शरीर का अंग बन जाता है और इसे दृढ़ एवं पुष्ट बनाता है। जिसकी जठराग्नि मंद होती है, वह वृद्धि अवस्था में भी निर्बल तथा युवावस्था में भी बूढ़ा ही रहता है।

सार यह है- हमारे उदर में एक प्रकार की उष्णता (अग्नि) है जो भोजन को पचाती, पौष्टिक भाग को ग्रहण करती और मलभाग को बाहर निकालती है। और रसादि धातुओं से मनुष्य शरीर का निर्माण वा वृद्धि करती है। इस उष्णता (गर्मी) की सबको आवश्यकता है और व्यायाम से सारे ही शरीर में उष्णता जाती है। वह नस-नाड़ियों के द्वारा भोजन से रस को इस प्रकार खींचती रहती है, जिस प्रकार जल को स्पञ्ज (जलशोषक) वा मसि (स्याही) को मसिशोषक (स्याहीचूस)। यही उष्णता शरीर में रक्त आदि धातुओं का निर्माण और संचार करती है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा से बिजली के तार में उत्तेजना (गर्मी) का संचार होता है, उसी प्रकार व्यायाम से सारे शरीर में रक्त उत्तेजित होकर नस नाड़ियों के द्वारा अत्यंत तीव्र गति से दौड़ने लगता है। नस नाड़ियाँ सब उत्तेजित तथा कार्यशील हो जाती हैं। संपूर्ण शरीर में रक्त संचार भलीभाँति होता है और यथायोग्य सब अंगों को शक्ति प्रदान करता है। विद्युत् बिना विद्युत् धारा (Current) के सर्वथा निसत्त्व वा शक्तिहीन है। उसी प्रकार रक्त-संचारिणी सब नस-नाड़ियाँ रक्त संचार के बिना व्यर्थ हैं। रक्त संचार, बिना रक्त बने कैसे?

रक्त बनता है रस से और रस बनता है भोजन के पचाने से। भोजन पचता है उष्णता (पेट की गर्मी) से और रक्तादि बनते हैं। यह रक्त नस नाड़ियों के द्वारा नियम से सारे देह में परिभ्रमण करता हुआ शक्ति संचार करता है। व्यायाम से प्रदीप्त हुई जठराग्नि भोजन से पोषक द्रव्यों को ही ग्रहण नहीं करती, अपितु इसमें यह भी शक्ति है कि यह शरीर से विजातीय (व्यर्थ के) मल मूत्रादि द्रव्यों को भी बाहर निकाल फैंकती और शरीर को शुद्ध, पवित्र बनाती है। जिस प्रकार मार्जनी (झाड़ू) घर में मार्जन (सफाई) का कार्य करती है, उसी प्रकार यह शरीर की गर्मी अनेक मार्गों द्वारा मल मूत्र आदि कूड़े करकट को बाहर निकाल फेंकती है और यह उष्णता व्यायाम से शरीर में इतनी अधिक उत्पन्न होती है कि यह स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म चिपटे हुए मलों और दोषों को भी गुदा, मूत्रेन्द्रिय, नेत्र, कर्ण, नासिका और रोमकूपादि के द्वारा मल, मूत्र, श्लेष्म, कफ, थूक, लार, पित्त और स्वेद (पसीना) आदि के रूप में शरीर से बाहर निकालकर ही छोड़ती है। यहां तक कि व्यायाम करने से पसीने के द्वारा अनेक प्रकार के विष भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

-स्वामीजी कृत ब्रह्मचर्य के साधन (चतुर्थ भाग) से

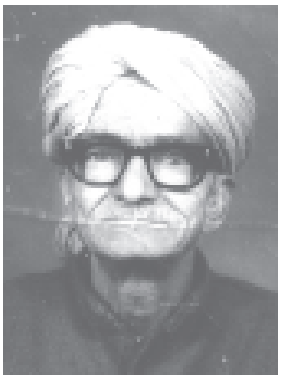

भजनावली

विद्या के भण्डार देश में बढ़ रही मूर्खताई।

महाशय हरद्वारीलाल आर्य (महात्मा हरिदेव जी) संस्थापक गुरुकुल सिंहपुरा, सुन्दरपुर
जन्म : ज्येष्ठ शुदि 10 संवत् 1970 **देहान्त** : 20 दिसम्बर 1992 ई०

विद्या के भण्डार देश में बढ़ रही मूर्खताई।
फैशन ने सब पागल कर दिए नरनारी अब भाई।।टेक।।

कदे वेदशास्त्र पढ़ा करैं थे तब इज्जत पाया करते थे।
सब मुल्कों से विद्या पढ़ने यहाँ पर आया करते थे।।
भारत तेरे चरणों में सब शीश झुकाया करते थे।
तेरे चालचलन और रहनसहन को सभी सराहा करते थे।
आज काले काफिर तनै कहैं, सब मुस्लिम और ईसाई।।१

नए नए पाखण्ड फैल रहे भाई वेदों के प्रचार बिना।
ब्रह्मसमाजी देव समाजी सत्संगी सत् आचार बिना।
राधास्वामी देवसमाजी बालम हो गए नार बिना।
नए नए सूबे बनन लगे भाई ताकतवर सरकार बिना।
भाई भाई के प्यार बिना आज भरता देश तवाई।।२।।

गुरुकुलों में पढ़ना छोड़ दिया कालेजों में लगे पढ़ाने।
देवनागरी संस्कृत भाषा से लगे नाक चढ़ाने।
माता पिता खुद बच्चों को अब फैशन लगे सिखाने।
ब्रह्मचर्य को नष्ट किया लागे व्यभिचार फैलाने।।
लड़े लड़की कालेज में करैं धोरै बैठ पढ़ाई।।३।।

जाति को बरबाद करण को एक और फैशन चाला।
पहले लड़की बिका करैं थी आज बेचै लड़के वाला।।
जिसकै होज्या दो चार लड़की उसका कढ़ै दिवाला।
शर्मदार और इज्जतमंद का दुनिया में मुंह काला।।
पचास हजार तो पहले लें पीछे लें ऊत सगाई।।४।।

लेके सगाई मेरे भाई यूं खोल कराने लाग्या।
दो सौ बाराती कार और बस यूं ऊत अड़ाने लाग्या।
चांदी का नारियल सोने का जेवर गिनवाने लाग्या।।
मोटर साईकिल कार और टी० वी० यूं फरमाने लाग्या।।
मेवा सब्जी कुल्फी पापड़ लिखले नाम मिठाई।।५।।

हिन्दुस्तानी बंगाली तू सभी मिठाई करिए।
अचार मुरब्बे सब्जी रायता छह छह प्याली धरिए।
कोका कोला कुल्फी भाई भां ठंडाई भरिए।
बारात जिमातै शराब उड़ेगी, मन में मतना डरिए।
जितने पहले ब्याह में लगते आज लेज्यां हलवाई।।६।।

पहले नहीं थी ज्यान बदन में एक और आफत आगी।
कमजोर बदन बेरोजगारा फैशन की बीबी थ्यागी।
नए फैशन के जेवर कपड़े तबीयत देख लुभागी।
नहीं मिले तो रूठ गई बाबू जी बने बैरागी।।
कुत्ते बिल्ली वाली रहती घर में रोज लड़ाई।।७।।

साड़ी और कपड़े का अब तो कोई अनुमान नहीं है।
बहु बेटी की फैशन में अब तो कोई पहचान नहीं है।।
छोटे बड़े की अब दुनिया में आन और काण नहीं है।।
बहन भाई आपस में बोलैं शुद्ध जुबान नहीं है।।
जा क्लबों में लड़की नाचैं देखें बाप और भाई।।८।।

अंग्रेजी को पढ़ लिखकर लड़की बेकार फिरैं हैं।
नंगे सिर और सैंडल पहरैं घर से बाहर फिरैं हैं।।
मात पिता और भाई कुटुम्ब की कुछ ना शर्म करैं हैं।
हॉकी बल्ले लिए हाथ में संग में यार फिरैं हैं।।
लाज शर्म पतिव्रत धर्म की करदी कती सफाई।।९।।

सीता तारा दमयन्ती की इन्होंने शान लजादी।
समवन्ती और दुर्गा जी कै इननै स्याही ला दी।।
पतिदेव पर हुकम चलावैं इसनै कहैं आजादी।।
पति पकावै पत्नी खावै क्योंकि तनखा आधी।।
अनपढ़ से ज्यादा धर्मभ्रष्ट अब पढ़ी लिखी जां पाई।।१०।।

दीवा लाना हाथ जलाना बिजली फिटिंग करा दे।
पानी लाती दुखड़ा पाती नल भी घर खुदवा दे।।
खाना पका ले बच्चे खिला ले नौकर घर लगवा दे।
बर्तन मांजै कपड़े धोवै बिस्तर वहीं बिछा दे।।
नौकर से बदफैली होती बड़े घरों में भाई।।११।

साधन थोड़े जरूरत ज्यादा यूं दुनिया दुःख पारी।
खर्चा घणा आमदन थोड़ी बढ़ गए चोर जुवारी।
राजा रैयत ज्ञानी मूरख सबको लगी बिमारी,
डाके चोरी रिश्वत खाते करते चोर बाजारी।।
'हरद्वारीलाल' फैशन में फंसकर भरता देश तवाई।।१२।।

जानते हो!

❒आस्था

❍भारत के संविधान का निर्माण करने के लिए संविधान सभा का गठन जुलाई 1946 में किया गया।
❍संविधान सभा में कुल 389 सदस्य थे, जिनमें प्रांतों से 292, देशी रियासतों से 93 तथा कमिश्नरी क्षेत्रों से 4 सदस्य थे।
❍भारत-विभाजन के कारण 31 अक्तूबर 1947 तक संविधान सभा के सदस्यों की संख्या 299 रह गई।
❍संविधान सभा की प्रथम बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई थी।
❍13 दिसम्बर 1946 को डॉ0 राजेन्द्रप्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष बनाया गया।
❍प्रारूप समिति का गठन 29 अगस्त 1947 को डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में किया गया।
❍भारतीय संविधान के निर्माण में कुल 2 वर्ष, 11 माह तथा 18 दिन लगे।

☺☺☺हास्यम्☺☺☺

❖अनु- ऐसा कौन सा काम है जो बिना मेहनत किए ही हो जाता है?
हरसी- फेल होना।
❖डॉक्टर- बेटा, यह गोली दूध के साथ लेना क्योंकि यह थोड़ी गर्म है।
गोलू- जी, डॉक्टर, गर्म है तो बर्फ के साथ ले लूँ तो--?
❖डाकू-(बन्दूक तानकर) अपना पर्स मेरे हवाले कर दो--
प्रत्यू- यह लो--।
डाकू- कितने मूर्ख हो तुम! मेरी बन्दूक में तो गोली ही नहीं थी। हा हा हा--
प्रत्यू- और मेरे पर्स में भी कहाँ रुपये थे!
❖तीन चींटियाँ बातें कर रही थीं- एक लाल, एक काली और एक सफेद।
लाल से पूछा गया- तुम इतनी लाल क्यों हो?
लाल चींटी- मैं धूप में रहती हूँ, इसलिए लाल हो गई हूँ।
काली से पूछा गया- तुम इतनी काली क्यों हो?
काली चींटी- मैं कीचड़ में रहती हूँ इसलिए काली हूँ।
सफेद चींटी से पूछा गया- तुम सफेद क्यों हो?
सफेद चींटी- यह सब तो बाबा रामदेव की क्रीम का कमाल है।
❖ग्राहक-इस शीशे की क्या गारंटी है?
दुकानदार- इसे सौवीं मंजिल से भी नीचे फैंकोगे तो भी यह निन्यानवे वीं मंजिल तक नहीं टूटेगा।

बाल वाटिका

❒सुमेधा

प्रहेलिका:

❍लगातार चलता है वह,
नहीं किसी से डरता है वह।
कोई रोक नहीं पाता उसको,
फिर से कोई न पाता उसको।।

❍बोली में गुण बहुत हैं
पर मुझसे अच्छा कौन ?
सारे झगड़ों को टाल दूँ
बतलाओ मैं कौन?

❍आता है तो पुष्प खिलाता, पक्षी गाते गाना।
सभी को जीवन देता है पर उसके पास नहीं जाना।।

❍हरी कोठी है हमारी
उजली उजली धरती।
लाल लाल है बिस्तर पर
काली मछली सोती।।

❍वह कौन सी वस्तु है जो,
सूखे कपड़े उतारकर गीले कपड़े पहनती है?

समय मौन सूरज तरबूज कपड़े सुखाने की रस्सी

विचार-कणिका:

❒प्रतिभा

❍दूसरों के लिए किए गए कार्यों से आत्मशुद्धि होती है, इससे अहंकार कम होता है।
❍आनन्द वह खुशी है जिसे भोगकर पछताना नहीं पड़ता।
❍पढ़ने और विचार करने के बाद आचरण करने से ही पूरा फल मिल सकता है।
❍सुधारक को सबसे पहले अपना सुधार करना चाहिए। क्योंकि गन्दगी से कभी सुगन्ध नहीं फैल सकती है।
❍बड़े आदमी इसलिए महान नहीं होते कि वे बड़े हैं, उनकी महानता यह है कि वे दूसरों को बड़ा बनाते हैं।
❍गुण एकान्त में विकसित होता है, परन्तु चरित्र का निर्माण संसार के भीषण कोलाहल में होता है।
❍कमाया हुआ धन अपना नहीं होता है, अपितु परोपकार में लगाया हुआ धन अपना होता है।

साथ रहने में ही शोभा है।

एक ऋषि के कई शिष्य थे। सभी प्रतिभावान थे। पर उनमें से एक दो के मन में अहंकार का भाव आ गया था और वे आपस में लड़ते रहते थे। गुरु एक बार शिष्यों के साथ आग ताप रहे थे। एक शिष्य को कहा– एक कोयला अंगीठी से बाहर निकाल दो। मैं उसी से तापूंगा। शिष्य ने चिमटे के साथ कोयला निकाल दिया। पर यह क्या! कोयला अंगीठी से बाहर आते ही काला हो गया। गुरु ने शिष्यों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा– यह कोयला अंगीठी के अंदर चमक रहा था, पर बाहर आते ही काला हो गया। उसी तरह तुम्हारी क्षमता की चमक एकता रूपी अंगीठी के भीतर ही है। इससे अलग होते ही तुम्हारी चमक फीकी पड़ जाएगी।

प्रत्येक मनुष्य को समाज के ऐसे सभी नियमों का पालन करना चाहिए जो सबके भले के हों। मिलकर रहना और मिलकर चलना मानवता का एक उत्तम गुण है। मिलकर रहने से हमारी शक्तियों का विकास होता है।

धरोहर

एक व्यापारी के चार बेटे थे। वह बूढ़ा हो गया था। उसे हरदम यही चिन्ता खाए जाती थी कि उसके बाद घर की संभाल कौन करेगा। उसने चारों बेटों की परीक्षा करनी चाही। उसने अपने घर पर एक बड़े यज्ञ का आयोजन किया और अपने बेटों को एक एक मुट्ठी धान देकर कहा– इसको संभाल कर रखना और जब मैं मांगूं तब वापस लौटा देना।

सबसे बड़े बेटे ने सोचा– पिताजी मजाक कर रहे हैं। उसने धान को ऐसे ही फैंक दिया।

दूसरे ने सोचा– घर में बहुत धान रखा ही है, जब पिताजी मांगेंगे तो उसमें से एक मुट्ठी निकाल कर दे दूंगा।

तीसरे ने उस एक मुट्ठी धान को अच्छी तरह से पोटली में बांधकर संदूक में रख दिया।

सबसे छोटे बेटे ने उस एक मुट्ठी धान को मकान के पिछवाड़े में बो दिया। अच्छी वर्षा हुई। अच्छी फसल हुई। दूसरी, तीसरी, चौथी साल भी उसने धान बोया, इस प्रकार उसने कई घड़े धान इकट्ठा कर लिया।

तीन प्रेरक प्रसंग

❐सत्यसुधा शास्त्री

उस साल व्यापारी ने फिर एक यज्ञ का आयोजन किया। उसने अपने चारों बेटों से एक मुट्ठी धान मांगा। बड़े ने कह दिया कि मैंने तो सोचा था कि आप मजाक कर रहे हैं, इसलिए मैंने धान फैंक दिया।

दूसरे ने घर में पड़ी धान में से एक मुट्ठी लाकर दे दिया। तीसरे ने संदूक में से निकाल कर वहीं पोटली पिता को सौंप दी।

चौथे ने सारी बात बता कर कहा– पिताजी उस एक मुट्ठी धान से मेरे पास अनेक घड़े धान हो गई है। और उसने सारी धान मंगवाकर पिता के सामने रख दी। पिता ने प्रसन्न होकर उस बेटे को व्यापार की सारी जिम्मेदारी सौंप दी और खुद वानप्रस्थ हो गए।

वेद में आता है– बुद्धिमान पूर्वजों की बनाई हुई श्रेष्ठ परम्पराओं की रक्षा करो। **ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।** हम अपने पूर्वजों से प्राप्त श्रेष्ठ परम्पराओं की रक्षा करके, उनके दिये ज्ञान का विस्तार करके ही ऋषि ऋण से उऋण हो सकते हैं।

सोच का अन्तर

एक चींटी कहीं जा रही थी। रास्ते में उसे दूसरी चींटी मिल गई। दोनों ने एक दूसरे का हालचाल पूछा– पहली ने कहा और तो सब ठीक है, पर मेरा मुंह हमेशा खारा बना रहता है।

दूसरी ने पूछा –रहती कहाँ हो?

उसने बताया नमक के पहाड़ पर।

'तब तो मुंह खारा रहेगा ही। आओ मैं तुम्हें अपने चीनी के पहाड़ पर ले चलती हूँ।'

चीनी के पहाड़ पर जाने के बाद भी पहली चींटी का मुंह खारा ही रहा। पहली ने कहा– अपना मुंह खोल कर दिखाओ। उसने देखा– उसके मुंह में नमक का कण था। उसने कहा –जब तक मुंह में नमक रहेगा, कुछ भी करलो, मुंह तो खारा रहेगा ही। उसने मुंह से नमक निकाला तो उसका मुंह भी मीठा हो गया।

जब तक मनुष्य अपने पूर्वाग्रहों को नहीं छोड़ेगा उसे सत्य की प्राप्ति होगी भी कैसे? सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में तत्पर रहना ही मनुष्य के कल्याण का उपाय है। सत्य को प्राप्त करने के लिए पहले हमें अपने अन्दर स्थित असत्य को छोड़ना पड़ेगा।

लवजिहाद, धर्मान्तरण व हलाल मुक्त भारत बना वैदिक शिक्षा को घर घर पहुंचाएं : विनोद बंसल

दो दिवसीय ऑन लाइन राष्ट्रीय वैदिक सत्संग एवं राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न

नई दिल्ली, लवजिहाद, धर्मांतरण तथा हलाल मुक्त भारत बनाकर वैदिक शिक्षा को घर-घर पहुंचाने के आह्वान के साथ २९ अगस्त को आर्यसमाज संतनगर नई दिल्ली द्वारा आयोजित दो दिवसीय ऑन लाइन (गूगल मीट) राष्ट्रीय वैदिक सत्संग व संगोष्ठी सम्पन्न हुई। मुख्य वक्ता के रूप में संबोधित करते हुए विश्व हिंदू परिषद के राष्ट्रीय प्रवक्ता श्री विनोद बंसल ने कहा कि स्वामी दयानंद सरस्वती व स्वामी श्रद्धानंद के मार्ग पर चलकर हमें समरस, शोषणमुक्त, समर्थ व शक्तिशाली भारत की पुनः प्रतिष्ठा करने हेतु देश से लवजिहाद, धर्मांतरण, गौ हत्या तथा जिहादी आतंकवाद का समूल नाश कर वैदिक शिक्षा, संस्कार और संस्कृति को घर-घर पहुंचाना होगा। २०२५ में होने वाली आर्यसमाज की १५०वीं जयंती से पूर्व हमें इस महान लक्ष्य को प्राप्त करना होगा। आर्यसमाज मंदिरों में असंख्य महिलाओं तथा अनुसूचित जाति व जनजाति के बन्धु-भगिनियों द्वारा पुरोहित के रूप में वैदिक यज्ञ व संस्कारों का नियमित रूप से कराया जाना समरस समाज की पुनर्स्थापना में मील का पत्थर साबित हो रहा है। वैदिक विदुषी दर्शनाचार्या श्रीमती विमलेश आर्या के कुशल व प्रभावी संचालन, कच्छ गुजरात से दार्शनिक विद्वान स्वामी शांतानंद जी के मार्गदर्शन, बाड़ी (राजस्थान) से वैदिक विदुषी श्रीमती कमलेश गर्ग के प्रेरक प्रवचन, मुंबई से श्री संदीप आर्य की अध्यक्षता, मध्यप्रदेश से श्री विकास आर्य के मुख्य आतिथ्य तथा दिल्ली आर्य महिला प्रतिनिधि सभा की मंत्री श्रीमती रचना आहूजा के विशिष्ट आतिथ्य में सम्पन्न इस ई-गोष्ठी में सैंकड़ों प्रतिभागियों ने सहभागिता की। कार्यक्रम की संचालिका दर्शनाचार्या विमलेश आर्या ने कहा कि हमें देश भक्ति की भावना अपने बच्चों में भरनी चाहिए और उन्हें अपने साथ आर्यसमाज मंदिर में भी ले जाना चाहिए, जिससे उन पर अच्छे संस्कार पड़ें और वे आगे चलकर भगतसिंह जैसे वीर बहादुर बनकर राष्ट्र की रक्षा कर सकें, तभी हमारा राष्ट्र एक सुदृढ़ और मजबूत राष्ट्र बन सकेगा।

विमलेश आर्या, संचालिका
आर्यसमाज संत नगर, दक्षिणी दिल्ली मो० ८१३०५८६००२

वेदिक पर्व श्रावणी उपाकर्म स्वाध्याय की प्रेरणा देता है : महेश आर्य

नगर आर्यसमाज, बीकानेर (राज०) के प्रधान महेश आर्य ने श्रावणीपर्व पर यज्ञोपवीत धारण करने व बदलने के अवसर पर स्वाध्याय का महत्व शास्त्रों के आधार पर बताते हुए कहा कि स्वाध्याय से ऋषियों की, हवन से देवों की, श्राद्ध से पितरों की और अन्न से अतिथियों और प्राणियों की यथाविधि सेवा करें। स्वाध्याय करने वाला सुख की नींद सोता है, इससे इन्द्रियों का संयम और एकाग्रता आने से प्रज्ञा की अभिवृद्धि होती है। वरिष्ठ सदस्य नरसिंह आर्य ने कहा कि श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होने से श्रावणी पर्व कहलाता है। रक्षाबंधन पर्व भाई को बहिन की और श्रावक को ऋषियों व गुरुजनों की रक्षा करने का सन्देश देता है। कार्यक्रम का प्रारंभ महेश-लक्ष्मी दम्पती के यजमानत्व और श्रीमती सुनीता के ब्रह्मत्व मे हुये यज्ञ से हुआ। यज्ञ में मुकुल और विशाल सोनी ने यज्ञोपवीत ध ारण किया व अन्य ने बदले। श्रीमती सुनीता ने कहा कि संस्कृत देव भाषा है तथा यह पूर्णतः वैज्ञानिक भाषा है जो कम्प्यूटर के लिए भी श्रेष्ठ बताई गई है। इस अवसर पर १९४० के दशक में हैदराबाद धर्म स्वातन्त्र्य आंदोलन के हुतात्माओं को स्मरण कर कोटि-कोटि नमन किया गया। श्रीमती उषा देवी, लक्ष्मी, सुनीता, नीलू, भूमी आदि ने पर्व पर भजनों की प्रस्तुति दी। उपमंत्री श्रीमती उषा के धन्यवाद ज्ञापन के बाद कार्यक्रम का समापन हुआ।

श्रीमती उषा सोनी, उपमंत्री
नगर आर्यसमाज, बीकानेर

शीतल जल प्याऊ का उद्घाटन

जींद, पटियाला चौंक पर शहीदे आजम युवा क्लब द्वारा नवनिर्मित शीतल जल प्याऊ का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर हवन का आयोजन किया गया, जिसमें श्री शिवप्रकाश सैनी ने यज्ञ की व्यवस्था में विशेष योगदान किया और श्री सहदेव शास्त्री ने यज्ञ ब्रह्मा की भूमिका निर्वहन की। विधायक डॉ० कृष्ण मिढा के सुपुत्र रुद्राक्ष मिढ़ा ने पूर्णाहुति दी। संस्था के सदस्यों के अलावा विधायक जी की धर्मपत्नी तथा श्रीमती निर्मल सैनी, श्रीमती सुमन मान आदि उपस्थित रहे। ज्ञातव्य है कि शहीदे आजम युवा क्लब सेवा कार्यों में एक अग्रणी संस्था है। इस संस्था ने अनेक स्थानों पर प्याऊ का निर्माण किया है। संस्था के प्रधान श्री सुभाष व अन्य सदस्यगण सामाजिक कार्यों में बढ़ चढ़कर भाग लेते हैं। हवन पर श्रीमती निर्मल सैनी व उनकी टीम ने गीत भी प्रस्तुत किये।

हितकारी प्रकाशन समिति हिण्डौन सिटी द्वारा पुन: प्रकाशित

डॉ० विवेक आर्य द्वारा सम्पादित दुर्लभ साहित्य अब जींद में उपलब्ध

वैदिक धर्म की जय

(विविध आर्य सिद्धान्तों का संवाद रूप में प्रतिपादन
मूल लेखक :
पं० मुनीश्वरदेव सिद्धान्तशिरोमणि
इस संस्करण के सम्पादक :
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ संख्या : १२०, मूल्य ८० रुपये

इस्लाम के दीपक

(मसाबीहुल इस्लाम का हिन्दी अनुवाद)
मूल लेखक :
स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय
वर्तमान संस्करण के सम्पादक
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ २६८, मूल्य : २०० रुपये

ऋषि बोध कथा

(ऋषि जीवन की गृहत्याग तक की प्रेरणायें)
मूल लेखक
स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ
इस संस्करण के संपादक
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ ९८ मूल्य ८० रुपये

काशी शास्त्रार्थ के 150 वर्ष

(काशी शास्त्रार्थ का इतिहास और विचार एवं मूल काशी शास्त्रार्थ सहित)
लेखकद्वय :
प्रो० (डॉ०) भवानीलाल भारतीय
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ ७०, मूल्य ४० रुपये

मूर्ति पूजा निषेधांक

(१९६९ में प्रकाशित आर्यमित्र साप्ताहिक का अंक, जिसमें मूर्ति पूजा के संबंध में अनेक उच्च कोटि के विद्वानों के लेखों का संकलन है)
तत्कालीन सम्पादक : उमेशचन्द्र स्नातक
इस संस्करण के सम्पादक
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ : ११०, मूल्य : ६० रुपये

दयानन्द का राष्ट्रवाद

(मूल पुस्तक : राष्ट्रवादी दयानन्द)
मूल लेखक :
स्व० पं० सत्यदेव विद्यालंकार
वर्तमान संस्करण के सम्पादक :
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ : ९४, मूल्य : ७० रुपये

मूर्तिपूजा शंका समीक्षा

मूल लेखक : स्व० पं० राजेन्द्र जी अतरौली
वर्तमान संस्करण के सम्पादक
डॉ० विवेक आर्य
पृष्ठ २८, मूल्य : २० रुपये

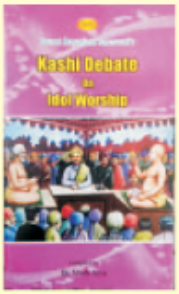

Kashi Debate On Idol Worship

Compiled By
Dr. Vivek Arya

Pages : 50, Price : Rs. 25

□**जींद में प्राप्ति स्थान** : शांतिधर्मी कार्यालय, पो बा० नं० 19, मुख्य डाकघर जींद (हरि०) व्हाट्स केवल 9996338552। □ये पुस्तकें सीधे **हितकारी प्रकाशन समिति, हिण्डौन सिटी,** राजस्थान (दूरभाष 70142 48036) से भी मंगाई जा सकती हैं। □ये पुस्तकें buyvadicsahitya@gmail.com से **आनलाईन** भी मंगाई जा सकती हैं। नोट : पुस्तकों का प्रेषण लॉकडाऊन खुलने के बाद ही संभव होगा।

इशोपनिषद् (पृष्ठ २५ का शेष)

इक जान हो के चलते हैं, मैं-तू को छोड़कर।
उलफत[५] की तंग राह में दो की गुजर नहीं।।7।।

शब्दार्थ : १=अहंकार। २=ईश्वर की असीम सत्ता। ३=लवलीन। ४=निरहंकारिता। ५=प्रेम।

समस्त चराचर जगत् में योगी ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं देखता। जब उसने अपने प्रेमपात्र के प्रेम के आधिक्य में अपनी ही सुध-बुध बिसार दी है, तब प्रकृति के ईंट-पत्थरों की उसे किस प्रकार चिन्ता रह सकती है और वह कैसे मोह, शोक के बन्धन में रह सकता है? यही ब्रह्म-विद्या का अन्तिम पाठ है कि जिसमें जीव अपनी सत्ता कायम रखते हुए भी, उससे बेसुध-सा रहता है और ध्येय (ब्रह्म) के सिवा कुछ भी उसकी स्मृति, ध्यान या अनुभव का विषय नहीं रह जाता। इसी अवस्था के प्राप्त कर लेने पर योगी का नाम जीवनमुक्त हो जाता है और इसी अवस्था वाले योगी शरीर के छूटने पर आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। इसी अवस्था पर पहुँचे हुए योगी के लिए उपनिषद् में कहा गया है-

स यो ह वै तत्परम् ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। (मुण्डक 3।2।9) अर्थात् वह, जो इस परब्रह्म को जान लेता है, ब्रह्म ही हो जाता है। कई विद्वान् इसका अर्थ करते हुए कह दिया करते हैं कि ब्रह्मवित् ब्रह्म के सदृश हो जाता है। परन्तु इस प्रकार के अर्थ करने की जरूरत नहीं। इस वाक्य में प्रयुक्त 'भवति' क्रिया से स्पष्ट है कि ब्रह्मवित् पहले ब्रह्म नहीं था, अब हुआ है तो वह आदि ब्रह्म हुआ, परन्तु जिस ब्रह्म के जानने से ब्रह्मवित् हुआ है वह अनादि ब्रह्म है। यह अन्तर सदैव ब्रह्मवित् में बना रहता है। (आगामी अंकों में जारी)

वैदिक धर्म की सावैभौमिकता (पृष्ठ १६ का शेष)

नाम उन देशों में कैसे गये, कब गये? यह खोज वेद का गौरव बढ़ाने वाली है। यदि इससे यह सिद्ध हुआ कि अति प्राचीन काल में इन देशों में वेद प्रचलित था, अथवा इन देशों का संबंध वेद के साथ था, तो अब वेद को वहां तक पहुंचाने का कार्य हमें करना चाहिये, इसका हमें पता लग जायगा।

मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मण दूर देशों में जाकर वहां वेद धर्म का प्रचार करने का कार्य करते थे। वह कार्य बन्द हुआ, इस कारण अन्य देशों में म्लेच्छ हुए। अर्थात् जगत् भर में म्लेच्छ बढ़ जाने का पाप भारतीयों पर है। यह पाप धोने का यत्न होना चाहिये।

भारत में घर-घर वेद का प्रचार हो और तत्पश्चात् भारतीय विद्वान् अन्यान्य देशों में जाकर वहां वैदिक धर्म का प्रचार करें, तब यह हो सकता है। परमेश्वर करे और यह शीघ्र हो जाय।।

(वेदवाणी, नवम्बर-दिसम्बर १९५४ से उद्धृत)

गद्दार कौन? (पृष्ठ १४ का शेष)

कारण अंग्रेजों की छोटी-सी सेना बिना लड़े युद्ध जीत गई थी। फिर भी मीर जाफर जयचंद की तरह गद्दारों की श्रेणी में प्रसिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि सत्य जानने वाले मौन रहे।

आधुनिक इतिहास का यह तथ्य किसी से छुपा हुआ नहीं है कि जिन्ना और नेहरू की हठ या महत्वाकांक्षा ने भारत के टुकड़े करवाए और गांधी-नेहरू ने जनसंख्या की अदला-बदली को स्वीकार न कर लाखों हिंदुओं का विनाश करवाया; पर द्वि राष्ट्र का जनक सावरकर को प्रचारित किया गया, क्योंकि सत्य जानने वाले लोग सत्ता से दूर थे और सत्ता पक्ष अपनी मर्जी से जिस किसी को भी महानता या हीनता का सर्टिफिकेट बांटता रहा। जब भी देशभक्त लोगों ने सावरकर के बलिदान का सम्मान करने का प्रयास किया, तभी सत्ता विहीन हुए विपक्ष ने सावरकर की छवि को धूमिल करने का अभियान चला दिया। बरसों के प्रश्नोत्तर का यह सुखद परिणाम निकला कि बहुत गहरे में दबाया हुआ सावरकर नई पीढ़ी के सामने चमक उठा, क्योंकि अंधेरा जितना गहरा होगा दीपक की चमक उतनी ही तेज होगी।

जिन्ना जाफर जयचंदों से देश बहुत शर्मिंदा है।
मां को डायन कहने वाला दुष्ट अभी तक जिंदा है।।
इस भारत की आजादी का पूरा सूर्य खिला होता।
नेहरूजी को भी यदि काले पानी का दंड मिला होता!
देशभक्त कब निर्भर रहते सरकारों दरबारों पर?
सावरकर का चित्र लगा है द्वारों पर दीवारों पर।।

ब्रह्मविद्या-- (पृष्ठ २३ का शेष)

विस्तार जैसे-जैसे जुड़ते जाएंगे, वैसे-वैसे प्रकाश फैलता जाएगा और जिस समय पावर हाउस से संबंध स्थापित हो जाएगा तो फिर तो बटन दबाने की भी आवश्यकता न रहेगी। वह ईश्वर स्वयं ही चुन लेगा और निश्चित रूप से योग्य ब्रह्मवेत्ता की व्यवस्था भी कर देता है। फिर तम का अभाव होने लगता है। अज्ञान छँट जाता है तो ज्ञान का प्रकाश उदित होता है और-

यदाऽतमस्तन्न रात्रिर्न तासान्छिव एव केवलः।। (श्वेताश्वेतर ४/१८) उसकी तुलना न दिन के प्रकाश से हो सकती है और न रात्रि के प्रकाश से।

आओ हम प्रभु के पात्र बनें। ❐❐❐

बिन्दु बिन्दु विचार

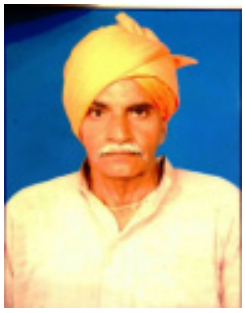

❑भलेराम आर्य, सांघी वाले 9416972879

❖ज्ञान प्राप्त करने के लिए खर्च किया गया हर पैसा सबसे ज्यादा लाभ देता है।

❖जिन्दगी की सबसे बड़ी समस्या यही है कि हम बूढ़े बहुत जल्द हो जाते हैं और बुद्धिमान बहुत देर से बनते हैं।

❖अपनी प्रतिभा को कभी मत छिपाओ।

❖अज्ञानी होना शर्म की बात नहीं है। शर्म की बात है –सीखने के लिए तैयार न होना।

❖कल के लिए वह काम कभी मत छोड़ो जो आप आज कर सकते हैं।

❖एक पैसा बचाना ही एक पैसा कमाना है।

❖बुद्धिमान वह है जो कुछ सीखता है, ताकतवर वह है जो इच्छाओं को जीतता है, धनवान वह है जो संतुष्ट है।

❖समय का धन सबसे ज्यादा कीमती है। समय को बरबाद करना सबसे बड़ी फिजूलखर्ची है।

❖सज्जनों की संगति से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं।

❖घोर नरक में रहना अच्छा है, किन्तु परमात्मा किसी को दुष्टों की संगति न दे।

❖प्राण त्याग देना अच्छा है किन्तु नीच की संगति अच्छी नहीं।

❖अपने कार्यों को सूरज, चांद और सितारों की तरह निस्वार्थ बना दो, तभी सफलता मिलेगी।

❖अगर जिन्दा रहना है तो साहस के साथ जियो, खतरों से दूर भागने की बजाय डटकर उनका मुकाबला करो, जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है।

❖मन को वश में करना बुद्धिमान पुरुष का काम है और उसके वश में हो जाना मूर्ख का।

❖ईश्वर ने हमें दो कान दिए और दो आँखें, परन्तु जबान केवल एक ही, ताकि हम बहुत ज्यादा सुनें, बहुत ज्यादा देखें, लेकिन बोलें कम, बहुत कम।

पाठकों से निवेदन

१ एक स्थान पर १० या अधिक सदस्य होने पर किसी एक सदस्य के पास पैकेट रजिस्टर्ड डाक से भेजते हैं। इसका रजिस्टरी खर्च हम वहन करते हैं। रजिस्टरी और पैकिंग सहित यह लगभग ३००/–(एक वर्ष) होता है। एक सदस्य का रजिस्टरी खर्च वहन करना हमारे लिये संभव नहीं है। यदि आपको अपनी प्रति साधारण डाक से नहीं मिल रही है और आप अपनी एक प्रति रजिस्टरी से मंगाना चाहते हैं तो अपने सदस्यता शुल्क में एक वर्ष के लिए अतिरिक्त ३००/– जोड़कर भेजें। हम चाहेंगे कि आप दस वर्षीय सदस्यता शुल्क भेजने की बजाय अपने आसपास के कम से कम दस सदस्यों का वार्षिक शुल्क भेजें। आपको एक वर्ष तक हर मास १० प्रतियाँ रजिस्टर्ड डाक से प्राप्त होंगीं। यह सहयोग कुछ पाठक कर भी रहे हैं।

२ आप अपनी प्रति ई मेल से भी पीडीएफ में मंगा सकते हैं। उसके लिए कोई अतिरिक्त शुल्क देय नहीं है।

कोरोना की विभीषिका के संदर्भ में हम पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे संगठित और एकजुट होकर सरकार और प्रशासन के निर्देशों का सख्ती से पालन करें। घर में प्रतिदिन यज्ञ करें। बच्चों को संध्या सिखाएँ। किसी आर्ष ग्रंथ का और नैतिक शिक्षा की पुस्तकों का स्वाध्याय बच्चों के साथ अवश्य करें।

कोरोना के लॉकडाऊन के मध्य हम पाठकों को इण्टरनेट के द्वारा ही शांतिधर्मी भेज पायेंगे। आप अपने ईमेल या व्हाट्स एप्प पर मंगा सकते हैं।

साथ ही इस अवधि का शुल्क भी पाठकों से नहीं लिया जायेगा।

ईश्वर आपकी रक्षा करे। आप स्वयं अपनी रक्षा करने के लिये निर्दिष्ट उपाय अवश्य करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक सहदेव द्वारा प्रियंका प्रिंटर्स, जींद के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रैस रोहतक से छपवाकर, कार्यालय शान्तिधर्मी ७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक), जीन्द-१२६१०२ (हरि०) से प्रकाशित। सम्पादक : सहदेव

।।ओ३म्।।

स्वामी भीष्म जी महाराज के शिष्य उत्तर भारत के प्रसिद्ध भजनोपदेशक

स्व. पं. चन्द्रभान आर्य

की चुनी हुई रचनाओं का संकलन

(हरियाणा साहित्य अकादमी के सौजन्य से प्रकाशित)

भजन भास्कर

❖भक्ति ❖प्रेरणा ❖शौर्य ❖नारी, चार सर्गों में विभक्त

पृष्ठ : 98, मूल्य : ₹80 (अस्सी रुपये) केवल
पंजीकृत डाक से मंगवाने के लिए मूल्य अग्रिम भेजें।

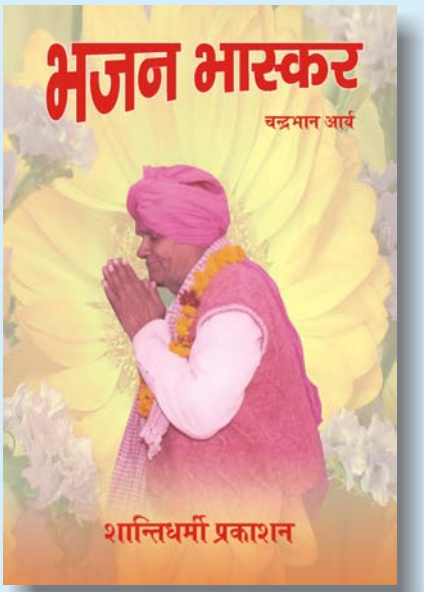

प्राप्ति स्थान

शांतिधर्मी प्रकाशन
756/3 आदर्श नगर सुभाष चौक जींद-126102 (हरयाणा)
दूरभाष : 9416253826, 9996338552

ओ३म्

M- 98964 12152

रवि स्वर्णकार

22 कैरेट हालमार्क आभूषणों के
विश्वसनीय निर्माता

नोट : राशि रत्न अंगूठी में फिट किए जाते हैं।

प्रो. रविन्द्र सोनी

नाईयों वाली गली (माता वाली), मेन बाजार, जीन्द

R.N.I. No. 70866/99 शान्तिधर्मी हिन्दी मासिक (अगस्त, २०२०) P.R. No. : PKL 150-A/2020-22

शांतिधर्मी एक अद्वितीय पत्र है

इसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिये स्वस्थ और सुरूचिपूर्ण सामग्री होती है।

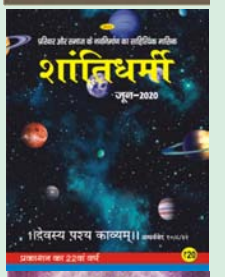

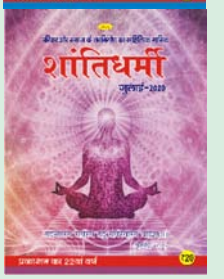

☆ **शांतिधर्मी** में धर्म-दर्शन के रहस्य, राष्ट्र व समाज की ज्वलंत समस्याओं पर अधिकारी विद्वानों के श्रेष्ठ विचार होते हैं।

☆ **शांतिधर्मी** भारतवर्ष के गौरवपूर्ण इतिहास की झलक दिखाता है।

☆ **शांतिधर्मी** वह मार्ग दिखाता है, जिसे पाने के लिये लोग भटक रहे हैं। परिवार में समाज में सह-अस्तित्व व अन्तरात्मा में सुख शांति का सन्देशवाहक है।

☆ **शांतिधर्मी** उस अध्यात्म का प्रचार करता है-जिसे अपनाने में देश-काल, जाति, मजहब, सम्प्रदाय की सीमाएँ आड़े नहीं आतीं। यह सच्चे ईश्वरीय ज्ञान का प्रचारक है।

☆ **शांतिधर्मी** स्वाध्याय भी है और स्वस्थ मनोरंजन का साधन भी।

☆ **शांतिधर्मी** प्रत्येक श्रेष्ठ-धार्मिक-राष्ट्रप्रेमी-मानवतावादी-व्यक्ति के लिये एक विचार-सूत्र है। प्रत्येक श्रेष्ठ परिवार का आभूषण है।

शांतिधर्मी पढ़िये-

अपने प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति, ईश्वर के प्रति सर्वांगीण दायित्वों को जानिये।

जीवन के जटिल व गूढ़ रहस्यों को सहज ही सुलझाईये।

मूल्य : एक प्रति : 20.00 वार्षिक : 200.00 10 वर्ष : 1500.00

शान्तिधर्मी कार्यालय
756/3, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक)
जीन्द-126102 (हरियाणा)
फोन 9416253826, 9996338552
E-mail : shantidharmijind@gmail.com